मोहन राकेश

अंडे के छिलके

अन्य एकांकी तथा बीज नाटक

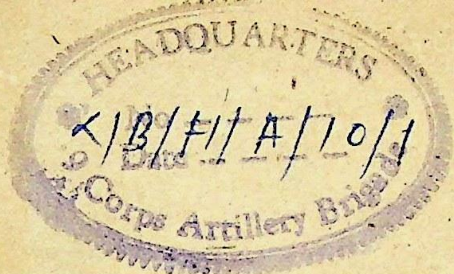


नाट्य-रचना की ओर मोहन राकेश की प्रवृत्ति अपने रचनात्मक जीवन के बहुत प्रारंभ से थी। विद्यार्थी-जीवन में भी (लाहौर में) संस्कृत-कथाओं पर आधारित नाटकों को न केवल वह लिखा करते थे, बल्कि उनमें अभिनेता के रूप में भाग भी लेते थे और उनका दिग्दर्शन भी करते थे। १९४७ के विभाजन के बाद उन्हें जालंधर चले आना पड़ा और कुछ समय बाद उन्होंने रेडियो से प्रचारित करने की दृष्टि से अनेकानेक ध्वनि-नाटकों का प्रणयन किया।

उनकी तीन सुविख्यात नाट्य-कृतियों ने उन्हें न केवल हिन्दी की वरन् भारतीय रंगमंच की शीर्षस्थ प्रतिभाओं की पंक्ति में बैठा दिया। उन्होंने अनेक एकांकी भी लिखे: वाद-संवाद की भाषा से सभी निरर्थक अंश निकालकर, दूसरे के लिए उसकी अर्थ-वत्ता को इसी कारण पैना और सामर्थ्यवान् करने के प्रयोग में दो बीज-नाटक, तथा 'छतरियाँ' नाम का एक अनन्य नाट्य-प्रयोग—जिसमें मंच पर भाषा के उपयोग को उन्होंने पार्श्व से आने वाली आवाज़ों के आधार पर प्रायः नगण्य-सा सिद्ध कर दिया। उनकी ये कृतियाँ पहली बार पुस्तकाकार छप रही हैं, और सिद्ध करती हैं कि नाट्य-क्षेत्र में राकेश का महत्व ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं, कि प्रसाद के बाद के हिंदी-नाटक-क्षेत्र के गतिरोध को तोड़ने में वह सफल हुए, वरन् उनके कृतित्व की दृढ़ नींव पर भी चिरस्थायी रहेगा।

मुखचित्र : वीरेन अरोड़ा
अलंकरण : रिफ़ॉर्मा स्टुडियोज़, दिल्ली

मूल्य : ११.००



295

अंडे के छिलके
अन्य एकांकी
तथा बीज-नाटक

अंडे के छिलके
अन्य एकांकी
तथा बीज-नाटक

मोहन राकेश



राधाकृष्ण प्रकाशन

मूल्य 11 रुपये

प्रकाशक
अरविन्दकुमार
राधाकृष्ण प्रकाशन
२, अंसारी रोड
दरियागंज, दिल्ली-६

मुद्रक
भारती प्रिंटर्स
दिल्ली-३२

प्रकाशकीय

काश, मोहन राकेश के इन चार एकांकियों, दो बीज-नाटकों एवं एक पार्श्व-नाटक का यह संग्रह उसके जीते-जी प्रकाशित हो पाता ! वह टालता रहा था, किस वजह से—अब कौन कह सकेगा ? ३ दिसम्बर १९७२ के सायं लगभग ६ बजे हृदय की गति रुक जाने से उसके एकाएक प्राणांत ने हिन्दी कथा-साहित्य के एक प्रमुख कृती और आधुनिक भारतीय रंगमंच की प्रगति के एक समर्थ वाहक को सदा के लिए बीच से उठा दिया।

उसी की ताज़ा और अमिट स्मृति को, उसकी चिर-अनुपस्थिति में, यह प्रकाशन सर्मापित है !

क्रम

अंडे के छिलके

पात्र

श्याम
वीणा
राधा
गोपाल
जमुना
माधव

पर्दा उठने पर गैलरी वाला दरवाज़ा खुला दिखायी देता है। बायीं ओर के दरवाज़े के आगे परदा लटक रहा है जिससे पता नहीं चलता कि दरवाजा खुला है या बंद। कमरे में कोई नहीं है।

श्याम सीटी बजाता गैलरी से आता है, पतलून कमीज के ऊपर बरसाती पहने। सिर भीगा है। बरसाती से पानी निचुड़ रहा है।

अंदर आकर वह इधर-उधर नजर दौड़ाता है।

श्याम : अरे ! कमरा खाली ! न भैया न भाभी ! (पुकार कर) भाभी !

दूसरे कमरे से वीना की आवाज़ :

वीना : कौन ?...श्याम ?...क्या बात है ?

श्याम : इधर आओ, तो बताऊँ क्या बात है।

वीना उधर से आती है।

वीना : तुम्हें भी आकर इस तरह आवाज़ देने की ज़रूरत पड़ती है ? इस तरह पुकार रहे थे जैसे किसी पराये घर में आये हो।

श्याम : पराया घर तो लगता ही है, भाभी। तुमने आते ही वह नक्शा बदला है इस कमरे का कि मेरा अन्दर पैर रखने का हौंसला ही नहीं पड़ता। पहले तो इस कमरे की वही हालत रहती थी जो आजकल मेरे कमरे की है। जूते को छोड़कर हर चीज़ या चारपाई पर या मेज़ पर। अब तो मुझे इस कमरे में सिर्फ़ वही एक कोना गोपाल भैया का नज़र आता है जहाँ पतलूनें और कोट एक-दूसरे के ऊपर टंगे हैं। बाकी कमरे की सरकार ही बदल गयी है। भैया की टेबल भी क्या याद करती होगी

कि किसी का हाथ लगा है। आजकल ऐसे चमकती है जैसे नयी-नयी पालिश होकर आयी हो ।

वीना : खड़े गाँव से आये हो जो खड़े खड़े ही बात करोगे ? बरसाती बाहर रख दो, सारा कमरा भिगो रहे हो। फिर बैठ कर आराम से बात करो। अभी तुम्हारे भैया आते हैं तो तुम्हें चाय बना देती हूँ ।

श्याम : सिर्फ़ चाय ? ग़लत बात। ऐसे सुहाने मौसम में सूखी चाय नहीं पी जा सकती। हरगिज़ नहीं ।

उसके सिर पर हाथ रख कर उसका मुँह बाहर की तरफ़ कर देती है ।

वीना : यह सुहाना मौसम पहले गैलरी में छोड़ आओ। सारा फ़र्श गीला कर रहे हो।

फिर पीछे से खुद ही उसकी बरसाती उतारने लगती है ।

लाओ, उतार दो बरसाती। मैं ही बाहर रख आती हूँ ।

श्याम उतारते उतारते जैसे कुछ ध्यान आ जाने से फिर से बरसाती पहन लेता है ।

श्याम : भाभी, एक बात कहता हूँ ।

वीना : क्या बात ? बरसाती तुमने फिर से पहन ली ? मैं कहती हूँ तुम तो बस...।

श्याम : भाभी, बात तो सुन लो। मैं कहता हूँ कि बरसाती आकर एक ही बार उतारूँ। चाय के साथ खाने के लिए भाग कर कोई चीज़ ले आऊँ। सूखी चाय का मज़ा नहीं आएगा। इस वक़्त पानी ज़रा थमा है, फिर ज़ोर से बरसने लगेगा।

वीना : फिर वही खाने की बात ? कोई ऐसा भी वक़्त होता है जब तुम्हें खाने की बात नहीं सूझती ?...अच्छा जाओ, मगर लाओगे क्या ?

श्याम : तुम जो कहो ले आऊँ। इस वक़्त गर्म-गर्म कचौरी और समोसे भी मिल जाएँगे और...।

वीना : और क्या ?

श्याम : और...और...कहो तो कोई और अच्छी चीज़ भी मिल सकती है...।

वीना : बरसते पानी में जाओगे तो अच्छी चीज़ ही लाओ। समोसे कचौरी क्या खाओगे ?

श्याम : अच्छी चीज़...अं...अं...तो अच्छी चीज़ हो सकती है... अं...।

वीना : जाओ, चार-छः अण्डे ले आओ। मैं तुम्हें अण्डे का हलुआ बना देती हूँ।

श्याम : शिव, शिव, शिव ! किसी और चीज़ का नाम लो, भाभी। इस घर में अण्डे का नाम ले रही हो ? जाओ जल्दी से जाकर कुल्ला कर लो। मुँह भ्रष्ट हो गया होगा।

वीना : क्या बात करते हो ? **(दबे स्वर में)** यहाँ रोज सुबह अंडे का नाश्ता होता है। तुम्हारे भाई साहब ने यह बिजली का स्टोव किस लिए ला कर रखा है ? माँ जी से तो कहा था कि सुबह बेड-टी लेनी होती है, रसोईघर से बना कर लाने में ठंडी हो जाती है, इसलिए ये सोलह रुपये खर्च किये हैं। माँ जी भी भोली हैं, झट मान जाती हैं। कोई इनसे पूछे कि स्टोव तो बेड-टी के लिए लाये हैं, मगर यह फ्राइंग पेन किस लिए लाये हैं ? इसमें क्या दूध गर्म होता है ?

श्याम : संयम, संयम, संयम ! ज़रा संयम से काम लो, भाभी। चार दिन जो अण्डे खा लिये हैं वे छिलकों समेत वसूल हो जाएँगे। अम्माँ के कान में भनक भी पड़ गयी तो सारे घर का गंगा इश्नान हो जायेगा। और तुम देख ही रही हो कि बादलों का दिन है। किसी को कुछ हो-हवा गया तो...।

वीना : भई, तुम लोगों की यह बात मेरी समझ में बिल्कुल नहीं

आती। अगर खाना ही है तो उसमें छिपाने की क्या बात है ? सबके सामने खाओ। माँ जी नहीं खातीं, इसलिये रसोईघर की बजाय यहाँ कमरे में बना लेते हैं। और अण्डे में जीव कहाँ होता है ? जैसे दूध, वैसे अंडा।

श्याम : हरि, हरि, हरि ! फिर वही नाम ! भाभी, आज इस बरसते पानी में तुम जान निकलवाओगी। तुमसे कोई कुछ नहीं कहेगा। अम्माँ मेरे सिर हो जाएँगी कि सब तेरी ही करनी है। तुम खाओ, बनाओ, जो चाहे करो। मगर इस चीज़ का नाम मुँह पर मत लाओ।...लाओ, पैसे निकालो। मैं तुम्हारे रिस्क पर ले आता हूँ। चोरी पकड़ी जाने पर अगर मेरा नाम लिया कि यह लाया है तो मैं साफ़ मुकर जाऊँगा और बेड-टी के साथ फ्राइंग पेन का रिश्ता अम्माँ को अच्छी तरह समझा दूँगा। कितने ले आऊँ—-चार कि छः ?...एकाध मेरे कमरे में भी रखा होगा।

वीना : अच्छा, ता यह बात है। आप अपने कमरे में...।

श्याम : (**बात काट कर**) फिर कहता हूँ भाभी कि नाम मत लो। अपने कमरे में न फ्राइंग पेन है न स्टोव जो कोई चीज साबित की जा सके। कच्चा लाते हैं और कच्चा खाते हैं। इसीलिए सुबह दूध की तलब कमरे में होती है। रखने-रखाने का इन्तज़ाम पक्का है। मगर तुम कहो कि अम्माँ के सामने भी यह बात ज़ाहिर कर दें तो हरगिज़ नहीं। हमें अपनी अम्माँ से भी प्यार है और अपनी ख़ूराक से भी।

वीना : बहुत अच्छी बात है न ! अम्माँ की रसोई के बरतन रोज़ भ्रष्ट करते हो, यह अच्छा प्यार है ! देख लेना, कल से तुम्हारा दूध का गिलास अलग न रखवा दिया तो...।

श्याम : अच्छी बात है। तुम हमारा दूध का गिलास अलग रखवा देना और हम यह फ्राइंग पेन यहाँ से उठवा देंगे। वैसे चाहो तो अब भी समझौता हो सकता है। तुम ज़बान से खाने का

काम लो, शोर मचाने का नहीं, और मैं अभी जाकर आधी दर्जन वह जो तुम कह रही थीं, लाये देता हूँ। इस समझौते की खुशी में पैसे भी अपनी जेब से ख़र्च किये देता हूँ। मंजूर? अच्छा, टा-टा!

गैलरी की तरफ़ चल देता है।

वीना : साथ थोड़ी किशमिश भी ले आना।

श्याम : ओ० के०। तुम इस बीच चाय का पानी रख दो। आते ही एक प्याली पीऊँगा।

चला जाता है। वीना खूंटी की तरफ़ जाकर वहाँ टँगे हुए कपड़े उतारने और तहाने लगती है।

वीना : मैं भी इस घर में आकर बस यहाँ की-सी हुई जा रही हूँ। दो दिन से कपड़े ही प्रेस नहीं किये।...साहब के कपड़ों का यह ढेर तो कभी ठीक ही नहीं होगा। मैं टाइयाँ और कपड़े अब कुर्सियों के पीछे नहीं टाँगने देती, इसलिए हर चीज़ खूंटी पर।

कपड़े उतारते हुए मोजे का एक जोड़ा नीचे जा गिरता है।

लो, यह पुराना मोज़ा भी खूंटी पर लटकाने की चीज़ है!

कपड़े संदूक पर रख कर मोज़ा उठा लेती है। मोज़ा कुछ भारी लगता है, इसलिए उसे हाथ से मल कर देखती है।

तो यह बात है। कल और परसों के छिलके साहब ने मोज़े में भर कर यहाँ लटका रखे हैं। इनकी यह कैसी आदत है, यह मेरी समझ में नहीं आता। छिलके नाली में डाल दिये जायें, गंदगी दूर हो। मगर नहीं। हफ़्ता भर छिलके इकट्ठे करेंगे, फिर डिब्बे में भर कर बाहर ले जाएँगे, जैसे किसी के लिए सौगात ले जा रहे हों।

मोज़ा कोने में डाल देती है।

अच्छा, श्याम के आने तक चाय का पानी तो रख दूं।

केतली उठा कर बायीं ओर के दरवाज़े की तरफ़ जाती है। पर्दा उठाने पर दरवाज़ा बन्द मिलता है। किवाड़ खट-खटाती है।

राधा जीजी!...राधा जीजी! इतनी देर में दरवाज़ा बंद करके क्यों पड़ गयीं? ज़रा खोलना, मुझे अन्दर नल से पानी लेना है।

कुछ क्षणों के बाद दरवाज़े की कुंडी खुलती है।

वीना : क्या बात है, जीजी? अभी संझा भी नहीं हुई और तुम दरवाज़े बन्द करके पड़ गयीं? मैंने सोचा कि कहीं जेठ जी न आ गये हों...।

राधा दरवाजे से निकल कर अंगड़ाई लेती है, जैसे सचमुच बिस्तर से उठी हो।

राधा : आज दोपहर से ही शरीर कुछ टूट-सा रहा था। मैंने कहा कि थोड़ी देर लेट लूं, फिर उठ कर रोटी-वोटी का धंधा करना होगा।

वीना : यह लेटने का वक़्त थोड़े ही है, बीबी? बैठो, मैं चाय बना रही हूँ, अभी सब लोग चाय पियेंगे। ये भी दफ़्तर से आने वाले ही होंगे। बैठो, मैं उधर से पानी ले कर आती हूँ।

अन्दर चली जाती है। राधा अनमनी-सी खड़ी रहती है। क्षण भर बाद अन्दर से वीना के हँसने का स्वर सुनायी देता है। राधा चौंक कर उधर देखती है।

राधा : क्या बात है वीना? अपने आप ही हँस रही हो?

वीना एक हाथ में पानी की केतली और

दूसरे हाथ में एक किताब लिये हँसती हुई उधर से आती है।

वीना : हँसने की बात नहीं है, जीजी ?...यह तुम्हारी चंद्रकान्ता...।

राधा झपट कर किताब उसके हाथ से छीनना चाहती है, मगर वीना उसे झाँसा दे कर उसके पास से निकल जाती है। केतली मेज़ पर रख कर वह किताब पीछे छिपा लेती है। राधा पास आकर किताब उससे छीनने का प्रयत्न करती है।

छीनाझपटी में नहीं दूँगी, जीजी! ऐसे माँग लो तो दे दूँगी। मगर इसमें इस तरह छिपा कर पढ़ने की क्या बात है? मैंने तो चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता संतति और भूतनाथ सब पढ़ रखी हैं। जब हम मिडिल में थीं तो स्कूल की लाइब्रेरी से लेकर पढ़ी थीं। इसमें ऐसा तो कुछ भी नहीं है कि इसे तकिये के नीचे छिपाकर रखा जाय और दरवाज़े बन्द करके पढ़ा जाय।

राधा : न भइया न! हम माँ जी के सामने ऐसी चीज़ कभी नहीं पढ़ सकते। कोई ख़राब बात चाहे न हो मगर माँ जी देखेंगी तो क्या सोचेंगी कि रामायण नहीं, महाभारत नहीं, दिन भर बैठकर ऐसे किस्से ही पढ़ा करती हैं। और हम पढ़ते भी कहाँ हैं? हमको तो कौशल्या भाभी ने ज़बर्दस्ती दे दी तो हम उठा लाये, नहीं हम तो ऐसी चीज़ कभी नहीं पढ़ते। घर के काम-धंधे से फुरसत लगे, तो कुछ पढ़ें भी। और हमारे पास अपनी गुटका रामायण है, कभी-कभी उसमें से ही थोड़ा-बहुत बाँच लेते हैं। तुम जानो इस घर में ये सब पढ़ेंगे तो जान नहीं निकाल दी जाएगी? यह तो कौशल्या भाभी हमारे पीछे पड़ गयीं कि जरूर पढ़ो नहीं तो क्या...।

वीना : यह तो मैं भी कहती हूँ, जीजी, कि ज़रूर पढ़ो। बहुत ही

इंट्रेस्टिंग किताब है । ज़रा बचकाना टेस्ट की ज़रूर है, मगर...।

राधा : **(चिढ़कर)** हाँ भाई, हम तुम्हारी तरह पढ़े-लिखे तो हैं नहीं...।

वीना : मेरा यह मतलब थोड़े ही है, जीजी ! मेरा मतलब तो यह है कि तुम रामायण महाभारत पढ़ने वाली हो, तुम्हें यह किताब ज़रा बचकाना टेस्ट की मालूम होगी ।

राधा : वह बात तो है ही ।...मगर सच कहें, वीना, तो इसमें भी तो शूरवीरता की ही कहानी है । जिस तरह भगवान राम सीता के लिए वन-वन में मारे-मारे फिरते हैं, उसी तरह कुँअर वीरेन्द्र सिंह चन्द्रकान्ता के लिए तिलिस्म के अन्दर घूमता-फिरता है और...।

वीना : **(हँसती हुई)** और जिस तरह भगवान राम समुद्र लाँघ कर सीता का उद्धार करते हैं, उसी तरह कुँअर वीरेन्द्र सिंह तिलिस्म तोड़ कर चन्द्रकान्ता का उद्धार करते हैं । तिलिस्म तोड़ना बल्कि समुद्र लाँघने से ज़्यादा मुश्किल काम है ।

राधा : **(उत्सुकतापूर्वक)** अच्छा, एक बात तो बताओ, वीना । तुमने तो सारी किताब पढ़ी है । अन्त में जाकर वनकन्या का क्या होता है ? कुँअर वीरेन्द्र सिंह के साथ उसका ब्याह हो जाता है कि नहीं ? मेरा दिल तो कहता है कि हो जाता है ।

वीना : हाँ, हाँ, ज़रूर हो जाता है ।

राधा : और चन्द्रकान्ता के साथ ?

वीना : उसके साथ भी हो जाता है ।

राधा : दोनों के साथ ही हो जाता है ?

वीना : हाँ भी और नहीं भी ।

राधा : हाँ भी और नहीं भी, यह कैसे ?

वीना : यही बता दिया तो फिर पढ़ना क्या रह गया ? जब पढ़ लोगी तो अपने आप पता चल जाएगा, **(किताब देती हुई)** यह

किताब ले लो। मगर अभी से दरवाज़ा बन्द करके नहीं पढ़ने दूँगी। रात को जब सब लोग सो जाएँगे तो मोमबत्ती जला कर पढ़ना। मैं भी कई दिनों से सोचती थी कि रात को तुम मोमबत्ती जला कर क्या करती रहती हो।...अभी यहाँ बैठो।

उसे बाँह पकड़ कर पलँग पर बैठा देती है और दी हुई किताब भी उसके हाथ से लेकर पलँग पर फेंक देती है।

राधा : अच्छा वीना, ये बाबा जी महाराज कौन हैं?

वीना : कौन से बाबा जी महाराज?

राधा : वही जो वीरेन्द्र सिंह को आत्महत्या से रोकते हैं।

वीना : तुम अभी तक उसी दुनिया में घूम रही हो, जीजी? अब थोड़ी देर के लिए तो तिलिस्म से बाहर निकल आओ।

केतली स्टोव पर रख कर स्विच ऑन कर देती है। बाहर से गोपाल आता है। वर्षा की फुहार से उसके कपड़े ज़रा-ज़रा भीग रहे हैं।

गोपाल : वाह, आज केतली पहले से ही रखी हुई है! बहुत सही अंदाज़ा है वक़्त का।

वीना : इस ग़लतफ़हमी में मत रहिए कि आपके लिए चाय का पानी रखा गया है। यह केतली श्याम के लिए रखी गयी है। आप आ गये हैं इसलिए एक प्याली आपको भी मिल जाएगी।

गोपाल : क्या बात है, आजकल श्याम पर बहुत मेहरबान हो रही हो? सुना है देवर भाभी का रिश्ता बहुत ख़तरनाक होता है।

वीना : बस सुना ही सुना है? जीजी बैठी हैं, ये तो मुझसे ज़्यादा जानती होंगी।

गोपाल : देखो, हमारी भाभी के लिए कुछ मत कहना। हमारी भाभी देवी की प्रतिमा हैं, तुम्हारी तरह नहीं हैं। तुम तो दिन भर

बैठी 'सन्ज़ एण्ड लवर्ज़' पढ़ती रहती हो और भाभी पढ़ती हैं रामायण, महाभारत।

वीना : **(शरारत के लहजे में)** सच ?

गोपाल : सच नहीं तो क्या ? क्यों भाभी ?

राधा : **(खिसियायी-सी)** भई, हम नहीं कुछ भी पढ़ते। हमें दिन भर काम से फुरसत मिलती है जो पढ़ें पढ़ायें ? कभी दस मिनट मिल गये तो चार अक्षर बाँच लिये।

गोपाल : वक़्त न मिले, यह और बात है। पर पढ़ने के लिए तुमने गुटका रामायण रख तो छोड़ी है ? मन में भावना होनी चाहिए।

वीना : आज जीजी की गुटका रामायण मैं इधर उठा लायी हूँ। जीजी तो लाने ही न देती थीं। अभी-अभी आपके आने से पहले मैं इनसे समुद्र लंघन की कथा सुन रही थी।

गोपाल : यह तो बहुत ही अच्छी बात है। तुमने बी० ए० पास तो किया है, मगर जो विद्या तुम्हें भाभी से मिल सकती है, वह स्कूलों-कालेजों में नहीं पढ़ायी जाती। क्यों भाभी ?

राधा : भैया, हम किसी को क्या पढ़ाएँगे ? हम तो आप ही अनपढ़ हैं। हम तो वीना के पास इसीलिए आ बैठते हैं कि दो चार अच्छे अक्षर इससे सीख जायें।

गोपाल : तुम, और इससे सीखोगी ? यह उल्टी रीत यहाँ नहीं चल सकती, भाभी ! दस्तूर यही है कि बड़ा बड़े की जगह और छोटा छोटे की जगह...। **(जेब से सिगरेट की डिब्बी निकालता हुआ)** इजाज़त हो तो...अ...अ...यह ज़रा... यह एक सिगरेट सुलगा लूँ। बहुत देर से नहीं पी। **(सिगरेट सुलगाता हुआ)** बारिश का दिन है, इसलिए तबीयत नहीं मानती।

वीना : आप तो कहते थे कि आप घर में किसी के सामने नहीं पीते।

गोपाल : बस सिर्फ़ भाभी के सामने पी लेता हूँ। वह भी इसलिए कि भाभी

ने एक बार गैलरी में छिप कर पीते हुए देख लिया था। जब चोरी पकड़ ही ली गयी तो हमने इकबाल कर लिया। उसके बाद से भाभी की इतनी मेहरबानी रही कि जब-जब ज़रूरत पड़ती थी, इनके कमरे में छिप कर पी लेते थे। आज पाँच बरस हो गये मगर मजाल है कि जो भाभी के अलावा किसी को पता तक चला हो।

वीना : हाँ, हाँ, क्यों पता चला होगा ? बीबी ने जेठ जी को बताया थोड़े ही होगा ?

राधा : हमसे कोई कसम उठवा ले जो हमने बताया हो। हमारी यह आदत नहीं है कि इधर की बात उधर और उधर की बात इधर लगाते फिरें। जब एक बार हमने कह दिया कि किसी से नहीं कहेंगे, तो किसी से नहीं कहा। दिल में रखने की बात हम दिल में ही रखते हैं।

गोपाल : और क्या ? दिल में रखने की बात दिल में रखनी ही चाहिए।...पानी खौल गया कि नहीं ?

वीना : बस अभी हुआ जाता है। उतनी देर में श्याम भी आ जाएगा ! ...

श्याम बरसाती की जेबों में हाथ डाले हुए बाहर से आता है।

श्याम : लो भाभी, ले आया। अब तुम जानो और तुम्हारा काम।

राधा को देख कर ज़रा असमंजस में पड़ जाता है।

अरे, बड़ी भाभी भी यहाँ पर हैं ? तब तो...।

गला साफ़ करता हुआ चुप कर जाता है।

वीना : यह अपनी बरसाती तो बाहर उतार दो। अभी तक इससे पानी टपक रहा है।

श्याम : वह बात तो ठीक है भाभी, मगर...।

वीना : मगर क्या ?

श्याम : मगर यह कि भाभी वह जो...वह जो तुमने कहा था, वह...।

वीना : लाये नहीं ?

श्याम : ल-लाया तो ज़रूर हूँ, म-मगर...।

वीना : मगर जीजी से डर लगता है, यही न ? डरने की कोई बात नहीं, जीजी किसी से नहीं कहेंगी । लाओ, निकालो ।

श्याम : **(ज़रा खंखार कर)** और अगर बाद में...?

वीना : नहीं, बाद में कुछ नहीं होता । लाओ, निकालो ।

गोपाल : क्या चीज़ है जिसके लिए इतनी हील-हुज्जत हो रही है ?

वीना : कुछ नहीं, आधा दर्जन अण्डे मँगवाये हैं । कह रहा था कि सूखी चाय नहीं पीऊँगा, तो मैंने कहा कि अण्डे का हलुआ बनाये देती हूँ ।

गोपाल : अण्डे का हलुआ ? यह तुम्हें क्या सूझी है ? मैंने तुम्हें अच्छी तरह समझा दिया था, फिर भी तुम...?

वीना : **(श्याम से)** तुम क्यों काठ से वहाँ खड़े हो ? अण्डे मुझे दे दो, और बरसाती उतार कर बाहर रख दो । **(गोपाल से)** आपको जब दीदी से सिगरेट का छिपाव नहीं है, तो अण्डे का छिपाव रखने की क्या ज़रूरत है ? **(श्याम से)** लाओ श्याम, दो मुझे ।

श्याम क्षण भर की हिचकिचाहट के बाद दोनों जेबों से हाथ निकालता है । उसके एक एक हाथ में तीन-तीन अण्डे हैं । वीना अण्डे उससे ले लेती है और वह बरसाती उतार कर गैलरी में छोड़ आता है ।

गोपाल : **(अव्यवस्थित-सा)** देखो वीना...मैंने तुमसे कहा था कि घर में...घर में यह चीज़ ठीक नहीं है । आदमी बाहर जा कर खा ले, वह और बात है । मगर घर में...!

वीना : घर में घर के आदमी देख लेंगे, इतनी ही तो बात है न ? तो जीजी से तो किसी बात का पर्दा है नहीं। ये आज न देखतीं तो किसी और दिन देख लेंती। जब रोज़ सवेरे...।

गोपाल : अललललल, क्या बक रही हो ? कुछ होश की दवा करो...।

राधा : सच पूछो गोपाल तो हमें इस चीज़ का पहले से ही पता है।

श्याम मुस्कराता है। गोपाल बेकस-सा आराम कुर्सी पर पड़ जाता है।

गोपाल : किस चीज़ का पता है ?

राधा : इस चीज़ का कि रोज़ सवेरे चाय के साथ तुम्हारे कमरे में क्या बनता है। तलने की आवाज़ तो छोड़ो, तुम जानो खुशबू भी तो उधर जाती है।

गोपाल : किस चीज़ की खुशबू जाती है ?

राधा : जो चीज़ बनती है, उसी की खुशबू आती है, और किस चीज़ की आएगी ?

वीना : लीजिए, और छिपाइए। जीजी तो खुशबू से यह भी पहचान लेती होंगी कि किस दिन आमलेट बनता है और किस दिन अण्डे फ्राई होते हैं।

राधा : ज़रूर जान लेते हैं। आज सवेरे तुमने आमलेट बनाये थे। बनाये थे कि नहीं ?

वीना : जीजी, जब तुम खुशबू पहचानती हो, तब तो ज़रूर तुम भी...।

राधा : (**बात काटकर**) न। हम कभी नहीं खाते। चाहे हमें किसी की कसम दिला लो। खुशबू तो तुम जानो हर चीज़ की अलग ही होती है। खाया नहीं है तो क्या...!

श्याम : सूँघा भी नहीं है ?...बड़ी भाभी, तुम्हारी नाक बहुत तेज़ है।

वीना इस बीच अण्डे एक कप में तोड़ने लगती है और छिलके मेज़ पर रखती जाती है।

राधा : बड़ी भाभी की नाक ही नहीं, आँखें भी बहुत तेज़ हैं। तुम अपने कमरे में जो करतूत करते हो, बड़ी भाभी को उसका भी सब पता है।

श्याम : **(चौंककर)** हैं ? मेरी किस करतूत का तुम्हें पता है ?

राधा : रहने दो, चुप ही रहो तो अच्छा है। मैंने माँ जी से तो नहीं कहा, मगर तुम्हारा दूध वाला गिलास मैंने मेहरी से अलग रखवा रखा है और उसे अलग से ही मँजवाती हूँ। और सर्दियों में जो तुम दो चम्मच बुख़ार-मिक्स्चर बीच में मिलाया करते थे, उसका भी मुझे पता है।

वीना : बुख़ार-मिक्स्चर ? क्या सर्दियों में इसे बुख़ार हो गया था ?

राधा : इसी से पूछो जो मिक्स्चर पिया करता था। अलमारी में किताबों के पीछे शीशी लाकर रख रखी थी, पन्द्रह रुपये वाली।

गोपाल : **(कुछ हैरान होकर)** पन्द्रह रुपये वाली ?

राधा : और नहीं तो क्या ? पूछ लो इससे।

श्याम कानों पर हाथ रखकर सिर झुका लेता है।

वीना : मगर जीजी, वह शीशी पन्द्रह रुपये वाली थी और चौदह रुपये वाली नहीं, इसका तुम्हें कैसे पता चला ? यह भी क्या सूंघ कर ही ?...

राधा : **(खिसियानी पड़ कर)** हमें सूँघने की क्या ज़रूरत है ? हम तो ऐसी चीज़ के पास भी नहीं जाते। हमारे भैया को एक बार डॉक्टर ने बतायी थी, सो वे पन्द्रह रुपये में लाये थे।

गोपाल : **(वीना से)** क्यों तुम भाभी को ख़ामख़ाह परेशान करती हो ? भाभी बेचारी तो अनजाने भी हमारा हित ही करती हैं। **(राधा से)** देखो भाभी, अब तुम्हें सब मालूम ही है, मगर भैया को नहीं बताना। उनका स्वभाव तो तुम जानती ही हो। माफ़ कर दें तो बड़ी-बड़ी बात माफ़ कर दें। और नाराज़ हों

लड़ाई पर जा रहे हैं। माँ, शायत उन्हें लड़ाई में चिट्ठी लिखने की फुर्सत ही न मिलती हो।

बिशनी : इतनी भी फुर्सत नहीं मिलती कि माँ को चार हरफ़, लिख कर डाल दे? उसे यह नहीं पता कि मेरी चिट्ठी जाती है तो माँ के कलेजे में जान पड़ती है? माँ के कौन दो चार हैं जिनके सहारे वह परान लेकर बैठी रहेगी? नदीदे को यह तो बात सोचनी चाहिए।

मुन्नी बिशनी के घुटने पर बाहें फैला कर उन पर सिर रख देती है।

मुन्नी : तुम फिकर क्यों करती हो, माँ? देख लेना, अगले मंगल को चिट्ठी जरूर आएगी।

कुछ क्षण निःस्तब्धता। बिशनी मुन्नी को घुटने से हटा कर फिर चरखा चलाने लगती है। मुन्नी उठकर सूखी हुई धोती को चारपाई से समेटने लगती है।

मुन्नी : **(धोती तह करते हुए बीच में रुक कर)** ब्रम्मा यहाँ से कितनी दूर होगा, माँ?

बिशनी : चौधरी कहता था कि कई सौ कोस दूर है। जाने चौधरी को भी पता है या नहीं? जब जो उसके मुँह में आता है कह देता है।

मुन्नी : चौधरी यह भी कहता है कि वहाँ गाड़ी मोटर नहीं जाती। पानी वाले जहाज में बैठ कर वहाँ जाते हैं।

बिशनी : यह तो मानक भी कहता था कि कलकत्ते से ब्रम्मा पानी वाले जहाज में बैठ कर जाते हैं। मानक कलकत्ते के समुन्दर में पानी वाले जहाज देख कर आया था।

मुन्नी : ब्रम्मा से चिट्ठी भी तो फिर माँ, जहाज में ही आती होगी। अगर हमारी चिट्ठी वाला जहाज डूब गया हो तो...?

बिशनी : ऐसी काली जबान न बोल। मुँह अच्छा न हो तो बात तो आदमी अच्छी करे। मानक कहता था कि जहाज इत्ता बड़ा होता है कि हमारे जैसे चार गाँव एक जहाज में आ जायें।...इत्ता बड़ा जहाज कैसे डूब सकता है?

मुन्नी : **(संकोच के साथ)** माँ पता नहीं सच है या झूठ, पर चौधरी कहता था कि लड़ाई में हर रोज कोई न कोई जहाज डूब जाता है।

बिशनी : चौधरी एक लड़ाई में क्या हो आया है, दुनिया भर की सारी अकल उसके पेट में आ गयी है। वह यहाँ बैठा ही सब-कुछ जानता है। अपनी तिरिया के चरित्तर का पता नहीं, जहाज डूबने का पता है।

मुन्नी धोती तह करके अन्दर ले जाती है। बाहर से पड़ोसिन कुन्ती आँगन में आती है। अधेड़ होने पर भी उसके चेहरे पर स्वास्थ्य की लाली झलकती है।

कुन्ती : बिशन देई, आज भी कोई चिट्ठी नहीं आयी?

बिशनी : आ कुन्ती!

चरखा-पूनी अलग हटा देती है। कुन्ती उसके नजदीक चारपाई पर आ बैठती है।

कुन्ती : कहते हैं आज कल ब्रम्मा में बड़े जोर की लड़ाई हो रही है।

बिशनी : यहाँ से कौन ब्रम्मा होकर आया है? लड़ाई का हाल वहाँ वालों को पता है कि यहाँ वालों को पता है? चौधरी रोज घर बैठा खबरें घड़ता रहता है, मानक आएगा तो पता चलेगा कि यह कितना विद्वान है। आज यह जो जी में आए कह ले, सब सच है।

कुन्ती : बेचारा जल्दी घर वापस आ जाए और आकर बहन के हाथ पीले करे। सब सहेलियाँ तो इसकी एक-एक करके

चली गयीं। धन्नो भी बैसाख में चली जाएगी। बस दो महीने में ही सब कुछ करना धरना है। ये सारा शहर ढूंढ़ आये हैं, पर कहीं दस गज़ मलमल नहीं मिली। सब चीज़ें जैसे विलायत चली गयी हैं।...तूने अभी इसके लिए कोई वर-घर नहीं देखा ?

बिशनी : वर-घर देख कर ही क्या करना है, कुन्ती ? मानक आय तो कुछ हो भी। तुझे पता ही है आजकल लोगों के हाथ कितने बढ़े हुए हैं।

कुन्ती : पर तू देख चौदह की तो हो गयी है, अब घर में रख कर और कितनी बड़ी करेगी ? मेरी धन्नो को अभी तेरहवाँ चल रहा है पर लोगों ने जान खा ली थी कि लड़की मुटियार हो गयी है, अब जल्दी से इसे कहीं विदा करो।...तू मानक के आने तक देख भाल तो कर। और जाने मानक को आने में अभी कितने दिन लगते हैं ? लड़ाई का कुछ पता है ?

बिशनी : नहीं, वह चार-छः महीने में जरूर आ जाएगा। वह कह गया था कि जल्दी से जल्दी छुट्टी लेकर मिलने के लिए आएगा। उसे गये भी अब सात महीने हो गये हैं।

कुन्ती : हाँ, शायत चार-छः महीने में आ जाय। पर बिशन देई, लड़ाई का मुंह शेर का मुँह है। शेर का मुंह किसने सूंघ कर देखा है ? लड़की तो देखते-देखते ताड़ हुई जा रही। तू कहे तो मैं कहीं खोज-खबर करती हूँ। मानक जाने साल में आता है कि छः महीने में आता है कि...

दीनू कुम्हार, हड्डियों का चलता-फिरता ढांचा-सा, बाहर से हाँफता हुआ आता है। उसके सिर के और दाढ़ी के बाल आधे पक चुके हैं। हाथ मिट्टी में सने हैं।

दीनू : मुन्नी की माँ, आज तो हद हो गयी !

बिशनी : किस बात की हद हो गयी ? इतना हाँफ क्यों रहा है ?

दीनू : बताने की बात नहीं, तू बाहर निकल कर अपनी आँखों से देख...

बिशनी : कुछ बताएगा भी, बात क्या है ?

दीनू : बात क्या है, तमाशा है। सब कहता हूँ मुन्नी की माँ, बेशरमी की हद हो गयी।

बिशनी : क्या फिर वह चौधरी की राँड...?

दीनू : नहीं उसकी बात नहीं है। दो जवान छोकरियाँ आज कहीं से आयी हैं। उनका ऐसा बेशरमी का पहिरावा है कि तुमसे क्या कहूँ ? रंग काला है पर बिल्कुल मेमों की तरह टिट-फिट चलती हैं। और घर-घर जाकर आटा दाल माँग रही हैं। इतनी जिंदगी चली गयी, पर ऐसी बेशरमी कभी नहीं देखी।

दीनू बाहर की ओर झाँक कर देखता है। मुन्नी अन्दर से आ जाती है।

दीनू : **(मुड़ कर)** वे तेरे घर की तरफ ही आ रही हैं।...मुन्नी को अन्दर भेज दे। मैं जाकर चौधरी को खबर सुना दूँ।

दीनू बाहर चला जाता है। बिशनी, कुन्ती और मुन्नी उत्सुक आँखों से बाहर की ओर देखती हैं। दो बर्मी लड़कियाँ बाहर से आती हैं। वे जाँघों तक लम्बे मैले फ्रॉक पहने हैं। दोनों के हाथों में एक-एक थैला है।

कुन्ती : **(बिशनी के कान में फुसफुसा कर)** ये लड़कियाँ क्रिश्टान हैं।

बिशनी उसका मतलब न समझकर प्रश्न-भरी नजर से उसकी ओर देखती है।

कुन्ती : **(उसी स्वर में)** क्रिश्टान होती हैं जो मरदों को घरों में

रखती हैं और आप बाहर घूमती हैं।

१ लड़की : थोड़ा दाल-चावल दे दीजिए माँ जी, परमात्मा आपका भला करेगा ।

२ लड़की : हम रिफ्यूजी लोग हैं माँ जी, बहुत दूर से भूखे-प्यासे आ रहे हैं।

१ लड़की : हम लोग रंगून से आ रहे हैं। हज़ारों लोग वहाँ से घर-बार छोड़कर चले आये हैं। हम एक घर की दस औरतें यहाँ से तीन मील दूर एक पुरानी धरमशाला में पड़ी हैं। हमारे दो भाई रास्ते में मारे गये हैं। थोड़ा दाल-चावल दे दीजिए माँ जी, आपकी जान की दुआ...

कुन्ती : **(बिशनी के कान के पास)** ये लड़कियाँ क्रिश्टान नहीं हैं। इनके लच्छन अच्छे नजर नहीं आते।

बिशनी : **(लड़कियों के चेहरे पर दृष्टि जमाये हुए)** हाय री, तुम इस तरह भीख क्यों माँग रही हो? देखने में तो तुम अच्छे घर की नजर आती हो...?

१ लड़की : पहले जब घर-बार था तब और बात थी माँ जी! अब घर-बार उजड़ गया है तो भीख का ही आसरा है। जापानी जहाज़ों ने बम मार-मार कर सारा शहर उजाड़ दिया है। रोज़ वहाँ गोला-बारी होती है। यहाँ तो आप लोग स्वर्ग में रहती हैं माँ जी! लड़ाई की वजह से हमारा मुल्क तो बिल्कुल तबाह हो गया है! फ़ौज को छोड़कर और कोई वहाँ नहीं रहा...

मुन्नी : **(ज़रा आगे आकर)** माँ, यह कहती है इनके मुल्क में बहुत लड़ाई होती है। इससे पूछो ब्रम्मा इनके मुल्क से कितनी दूर है?

२ लड़की : हमारे मुल्क का नाम ही बर्मा है बहन जी! हमारा शहर रंगून बर्मा में ही है।

बिशनी और मुन्नी : **(एक साथ)** तुम लोग बर्मा से आयी हो?

१ लड़की : हाँ, माँ जी, हम बर्मा से ही आयी हैं ! वहाँ रहने वाले हज़ारों-लाखों की जानें चली गयी हैं। जिसको जिधर रास्ता मिलता है वह उधर भागकर जान बचाने की कोशिश करता है। बहुत लोग भरे हुए घर छोड़कर चले आये हैं। माँ जी, आज हम लोग आप लोगों के ही आसरे हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत आप लोगों के घरों से मिल जाता है उसी से...

बिशनी : (**बात काटकर**) क्यों री, बर्मा में बहुत लड़ाई हो रही है ?

१ लड़की : वहाँ दिन-रात आग बरसती है माँ ! हम लोग फिर भी खुश-किस्मत हैं जो जान लेकर निकल आये हैं। तेरह दिन तक हम लोग भूखे-प्यासे जंगली रास्ते में चलते रहे हैं।

मुन्नी : तुम लोग बर्मा से पैदल चलकर आयी हो ?

१ लड़की : जी हाँ, जान बचाने का यही एक रास्ता था ! रास्ते में जंगल में बड़ी-बड़ी दलदलें पड़ती हैं। हममें से एक औरत एक दलदल में फँसकर वहीं रह गयी...

मुन्नी : माँ, ये कहती हैं कि वहाँ से पैदल आयी हैं और चौधरी कहता था कि वहाँ पानी वाले जहाज से जाते हैं ?

१ लड़की : जी, असली रास्ता जहाज़ का ही है। मगर उस रास्ते से बहुत ख़तरा है। जापानी लोग जहाज़ों को रास्ते में डुबो देते हैं। और हम लोगों को जहाज़ मिलते भी नहीं। जहाज़ों पर सिर्फ फ़ौजी लोग आते-जाते हैं।

बिशनी : (**सिहर कर**) जब जहाज़ डूब जाते हैं तो फ़ौजी लोग क्यों जहाज़ों पर आते-जाते हैं ? सरकार इतनी मूरख है कि फ़ौजियों को डूबने के लिए भेज देती है ?

१ लड़की : फ़ौजी लोग समुन्दर में जाकर लड़ते हैं माँ जी ! जहाज़ों-जहाज़ों में लड़ाइयाँ होती हैं। उधर से जापानी जहाज़

गोले चलाते हैं और इधर से अंग्रेज़ों के जहाज़। ऊपर से हवाई जहाज़ मार करते हैं। बड़ी भयानक लड़ाई होती है !

बिशनी के चेहरे की रेखाएँ गाढ़ी हो जाती हैं। वह चर्खे को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करती है, पर उसके हाथ जैसे निःशक्त हो रहे हैं।

मुन्नी : तुम जिस रास्ते से आयी हो, उस रास्ते से फ़ौजी नहीं भाग कर आ सकते ?

१ लड़की : नहीं, फ़ौजी वहाँ लड़ने के लिए हैं, वे नहीं भाग सकते। जो फ़ौज छोड़कर भागता है, उसे गोली मार दी जाती है...

बिशनी : **(सिहर कर)** हाय, नहीं।...फ़ौजियों को भागने की क्या ज़रूरत है ? उन्हें अपनी मियाद पर छुट्टी मिल जाती है।...जिसे आना होगा वह छुट्टी लेकर आएगा, भागकर क्यों आएगा ?...वे इतने अनजान थोड़े ही हैं ?

२ लड़की : आपके बच्चों की बड़ी उमर होगी, माँ जी ! हमें दो मुट्ठी चावल दे दीजिए।

कुन्ती : यहाँ हमारे अपने खाने को चावल नहीं हैं और इन लोगों को चावल चाहिए...

बिशनी : मुन्नी !

मुन्नी सामने आ जाती है।

बिशनी : जा, अन्दर हँडिया से कटोरी भर चावल ले आ।

मुन्नी अन्दर चली जाती है। कुन्ती असंतोष-पूर्ण दृष्टि से लड़कियों को देखती रहती है। कुछ क्षण खामोशी रहती है।

बिशनी सिर झुकाये कुछ सोचती रहती है।

बिशनी : **(सिर उठा कर)** क्यों री, ब्रम्मा से यहाँ तक कितने दिन का पैदल रास्ता है ?

१ लड़की : दिनों का कोई हिसाब नहीं है माँ जी ! पहुँच जायें तो महीना बीस दिन में पहुँच जायें और न पहुँच पायें तो कभी भी न पहुँच पायें। एक तो रास्ते में इतने घने जंगल हैं, फिर जंगली जानवर हैं और फिर पता नहीं कहाँ दुश्मन की फ़ौज का मोर्चा हो। जंगल के चप्पे-चप्पे में लड़ाई चलती है माँ जी ! हमने रास्ते में सैकड़ों सिपाहियों की गली सड़ी लाशें देखी थीं। यहाँ हिन्दुस्तानी सिपाहियों की लाशें पड़ी मिलतीं तो वहाँ जापानी सिपाहियों की। **(सिहर कर)** उनकी हालत देखकर दिल दहल जाता था...

बिशनी : **(विह्वल स्वर में)** हाय बस करो...

अपने पल्ले में आँखें छिपा लेती है। मुन्नी अन्दर से चावल लेकर आती है और एक लड़की उन्हें अपने झोले में डलवा लेती है।

१ लड़की : अच्छा माँ जी, परमात्मा आपको सुखी रखे !

दोनों लड़कियाँ बाहर चली जाती हैं। कुन्ती चारपाई सरका कर बिशनी के मोढ़े के बहुत पास आ जाती है।

कुन्ती : **(बिशनी के कन्धे पर हाथ रखकर)** बिशन देई !

बिशनी पल्ले से आँखें पोंछकर सिर ऊपर उठाती है।

कुन्ती : तू इस तरह दिल क्यों हल्का कर रही है ? क्या पता है ये ब्रम्मा से आयी हैं या कहाँ से आयी हैं ? मुझे तो

इनका चरित्तर ऐसा-वैसा ही लगता है। हाय रे राम ! लड़कियाँ हैं कि साँड़नियाँ !

मुन्नी बिशनी के पास फ़र्श पर बैठ जाती है।

मुन्नी : **(बिशनी के घुटने को सहलाते हुए)** माँ, मैं जो तुमसे कहती हूँ कि अगले मंगल को भैया की चिट्ठी जरूर आएगी। जितनी हमें फिकर है भैया को भी तो वहाँ उतनी ही फिकर होगी।

बिशनी : **(आँखें पोंछती हुई)** मैं कब कहती हूँ कि उसे फिकर नहीं। पर इतना तो लिख दे कि माँ मैं यहाँ हूँ, अच्छी तरह से हूँ...

मुन्नी : और क्या पता माँ, कि भैया आप छुट्टी लेकर आ रहे हों और इसलिए उन्होंने चिट्ठी न लिखी हो...?

बिशनी : **(ठन्डी साँस लेकर)** क्या पता ?

मुन्नी बिशनी के घुटने के साथ सट कर उसकी छाती पर सिर रख देती है।

मुन्नी : मेरा दिल कहता है कि भैया आप ही आयेंगे।

बिशनी कुछ न कह कर उसके सिर पर हाथ फेरने लगती है।

कुन्ती : **(अपनी ही सोच सेज गकर)** ये लड़कियाँ इतनी बड़ी हो जाती हैं फिर भी इनके घर वाले इनका ब्याह नहीं करते ?

बिशनी : क्या मालूम ?

मुन्नी की ठुड्डी उठाकर पल भर उसका चेहरा देखती रहती है। फिर उसका माथा चूमकर उसे साथ सटा लेती है।

बिशनी : तेरा दिल ठीक कहता है, बेटी ! चिट्ठी न आयी ता वह आप ही आयेगा !

मुन्नी लाड़ से माँ के गले में बाँहें डाल देती है। बिशनी उसे चूमकर और साथ सटा लेती है।

पर्दा गिरता है।

दूसरा दृश्य

वही आँगन। समय रात। दोनों चारपाइयाँ आँगन में बिछी हैं। दायीं ओर की चारपाई पर मुन्नी हथेलियों पर चेहरा टिकाये बैठी है। उस चारपाई पर ओढ़ने के लिए एक फटी हुई लोई रखी है। दूसरी चारपाई पर घिसी हुई दरी बिछी है और ऊपर दोहरा सूती खेस पड़ा है। बिशनी जलती हुई ढिबरी लिये अन्दर से आँगन में आती है।

बिशनी : (पास आ कर) तू अभी सोयी नहीं ?

मुन्नी : (चौंक कर) मुझे नींद नहीं आयी।...अभी सो जाती हूँ।

लोई खींच कर अपनी टाँगों पर कर लेती है।

बिशनी : इतनी रात चली गयी और तुझे अभी नींद नहीं आयी !

मुन्नी : तुम भी तो अभी तक जाग रही हो।

बिशनी : मेरी उमर में तो वैसे ही नींद नहीं आती।...अब सो जा, सबेरे उठ कर गोबर लाना है।

बिशनी अपनी चारपाई पर आ बैठती है। मुन्नी लेट जाती है। कुछ क्षण निःस्तब्धता रहती है।

मुन्नी : (करवट बदलकर) माँ, आज तारो ससुराल से वापस आ गयी है।

बिशनी : (अन्यमनस्क भाव से) अच्छा !

मुन्नी : उसके घर वाले ने इस बार उसे सुच्चे मोतियों के कड़े बनवा दिये हैं। वह आज गाँव में सबको दिखाती फिर रही थी। उसके कड़ों के मोती तारों की तरह चमकते हैं। वन्तों के कड़े भी उनके सामने कुछ नहीं हैं।

बिशनी : अच्छा, अच्छा ! तेरा भैया आएगा तो तेरे लिए उससे भी अच्छे कड़े और चूड़ियाँ लाएगा। अब सो जा नहीं तो सबेरे तेरी नींद नहीं खुलेगी।

मुन्नी अच्छी तरह लोई ओढ़ कर करवट बदल लेती है। बिशनी ढिबरी बुझा कर कोने में रख देती है और आप भी खेस ओढ़ कर लेट जाती है। उसके ढिबरी बुझाते ही प्रकाश का रंग पीले से हल्का नीला हो जाता है। साथ टिड्डियों की चिक-चिक का शब्द सुनायी देने लगता है जो क्रमशः काफ़ी तेज हो जाता है। बिशनी करवट बदलती है। प्रकाश हल्के से गहरा नीला हो जाता है और दूर एक कुत्ते के रोने की आवाज सुनायी देती है। फिर दूर गोली चलने का शब्द सुनायी देता है और कई व्यक्तियों के कराहने की आवाजें आती हैं। बिशनी चौंक कर उठ बैठती है। उसके उठने के साथ ही प्रकाश का रंग फिर हलका नीला हो जाता है।

बिशनी : मानक ! (इधर-उधर देख कर) मानक !

कुछ ऐसा शब्द सुनायी देता है जैसे दूर

आँधी चल रही हो ।

बिशनी : **(घबराये हुए स्वर में)** मानक !

बाहर से एक आहत व्यक्ति की आवाज़ सुनायी देती है—'माँ !' बिशनी चारपाई से उठ पड़ती है ।

बिशनी : **(अस्तव्यस्त भाव से)** तो सचमुच तू ही है मानक ?... कहाँ है बेटे ?

सुनसान में झिल्लियों के बोलने का सा शब्द सुनायी देता है और फिर जैसे कोई भागता हुआ आता है । बिशनी अस्तव्यस्त भाव से चारों देखती रहती है । फ़ौजी लिबास पहने एक घायल युवक डगमगाता-सा बाहर से आकर बिशनी के पैरों के पास गिर जाता है । बिशनी तड़प कर उसके पास ज़मीन पर बैठ जाती है ।

बिशनी : मानक !

उसका सिर गोदी में लेकर आवेगवश उस पर झुक जाती है । मानक कठिनता से सिर उठाता है ।

मानक : माँ ?

बिशनी : **(उसका सिर हाथों में लेकर विह्वल स्वर में)** तू ऐसा क्यों हो रहा है बेटे ?...क्या हुआ है तुझे ?

मानक : मैं घायल हूँ, माँ ! मुझे बहुत गोलियाँ लगी हैं । और ...और दुश्मन अब भी मेरे पीछे लगा हुआ है ।

बिशनी : दुश्मन ? कौन दुश्मन तेरे पीछे लगा हुआ है ? तेरा कौन दुश्मन है ?

मानक सीधा होने की चेष्टा करता है पर सफल नहीं हो पाता ।

मानक : वह...वह...उसे...उसको मैंने कई गोलियाँ मारी थीं। मगर वह मरा नहीं। वह ज़िन्दा है।...वह मेरे पीछे लगा हुआ है।...वह मुझे मारना चाहता है। ...उसने मेरा सारा शरीर ज़ख्मी कर दिया है।...मैं दौड़ता हूँ तो वह पीछे दौड़ता है। मैं रेंगता हूँ तो वह पीछे रेंगता है। वह मुझे नहीं छोड़ेगा। वह बड़ा ख़तरनाक है...पानी !

बिशनी : तू उठ, चारपाई पर लेट जा। मैं तेरे लिए दूध गरम करती हूँ।

मानक : दूध नहीं, पानी। और यहीं। वह अभी यहाँ आ जायगा। जल्दी। उधर देख। अँधेरे में। वह आ तो नहीं रहा ?

बिशनी व्याकुलतापूर्वक बाहर की ओर देखती है।

बिशनी : नहीं बेटे ! कोई नहीं है। तू यूँ ही घबरा रहा है। उठ आराम से चारपाई पर लेट जा...

मानक : नहीं।...पानी !

बिशनी पल भर असमंजस में रहकर उसे छोड़कर उठ खड़ी होती है और अन्दर चली जाती है। दो क्षण बाद वह पीतल के गिलास में पानी लिए हुए बाहर आती है। उसके हाथ काँप रहे हैं।

बिशनी : यह ले बेटे पानी। आराम से पीना। छोटा-छोटा घूँट करके। निरे हाल पानी पेट में जाकर लगता है। पहले थोड़ा कुछ खा लेता...

मानक : नहीं। मेरी भूख मर गई है माँ ! मुझे अब भूख नहीं लगती। पानी...

बिशनी गिलास लिए हुए उसके पास बैठ

जाती है। मानक गिलास उसके हाथ से लेकर ग़टाग़ट पानी पी जाता है। उसी समय किसी का हास्य-स्वर सुनायी देता है। मानक के हाथ से गिलास गिर जाता है। वह बाहर की ओर देखता है। उधर अँधेरे में एक बन्दूक का कुन्दा चमकता है। मानक सरककर माँ के नजदीक हो जाता है। बिशनी उसे बाँहों में समेट लेती है।

मानक : यह वही है। वह देख माँ! वह आ गया है। वह देख...

अँधेरे में बन्दूक का कुन्दा आगे की ओर बढ़ता है। साथ फिर हास्य-स्वर सुनायी देता है और फ़ौजी लिबास में एक और आकृति प्रकट होती है। बिशनी मानक को साथ सटा लेती है। आने वाला सिपाही पास आकर फिर हँसता है।

सिपाही : तू इसे गोद में लिये बैठी है?...देखती नहीं यह मुर्दा है?

बिशनी सिर से पाँव तक सिहर जाती है। मानक उठने के लिए जद्दोजहद करता है।

मानक : यह झूठ कहता है!...मैं मुर्दा नहीं हूँ। मैं हिल-डुल सकता हूँ, बात कर सकता हूँ...मैं मुर्दा नहीं हूँ।

बिशनी : (**उसे और साथ सटाकर आश्वस्त स्वर में**) हाँ बेटे! तेरी जान के साथ तेरी माँ की जान है। मैं जीती हूँ तो तुझे कैसे कुछ हो सकता है?

सिपाही बन्दूक का कुन्दा मानक के पास ले आता है।

सिपाही : इसे कैसे कुछ हो सकता है? मैं अभी इसका शरीर गोलियों से छलनी कर दूंगा। फिर मैं इसकी लाश ले जाकर जंगल में चील और कौओं के आगे डाल दूंगा...

हँसता है और बन्दूक का कुन्दा मानक के बहुत निकट कर देता है। बिशनी कुन्दा हाथ से पकड़ लेती है। मानक खड़ा होने की चेष्टा करता है पर लुढ़क कर बिशनी की गोद में गिर जाता है। बिशनी उसे अच्छी तरह छाती से लगा लेती है। सिपाही बन्दूक का कुन्दा उसके हाथ से छुड़ा कर उसे घूर कर देखता है।

सिपाही : तू इसे बचाना क्यों चाहती है? तू इसकी क्या लगती है?

बिशनी : मैं इसकी माँ हूँ। मैं तुझे इसे नहीं मारने दूंगी।

सिपाही : तू इसकी माँ है? (उसे और भी घूर कर देख कर) पर तू देखने में तो इस वहशी की माँ नहीं लगती।...तुझे पता है यह लड़ाई में वहशियों की तरह गोलियाँ चलाता है? इसने न जाने कितने सिपाहियों की जान ली है!...यह इन्सान नहीं जानवर है। और तू कहती है कि तू इसकी माँ है।

बिशनी : मैं इसकी माँ हूँ। मेरा बेटा वहशी नहीं है। इसने किसी की जान नहीं ली। यह किसी की जान नहीं ले सकता। यह तो मरता हुआ कबूतर भी आँखों से नहीं देख सकता। मैं इसे लड़ाई पर नहीं जाने दूंगी। यह घर में मेरे पास रहेगा...

सिपाही : यह घर में रहेगा?...मगर यह तो हज़ारों का दुश्मन

है। हज़ारों इसके दुश्मन हैं। वे इसको खोज रहे हैं। वे इसकी जान लेना चाहते हैं। **(मानक को पैर से ठोकर मारकर)** अब इसकी जान नहीं बच सकती। मैदान में हज़ारों सिपाही मर रहे हैं। यह वहाँ जाएगा तो भी मारा जाएगा और यहाँ रहेगा तो भी...

फिर मानक को ठोकर मारने लगता है पर बिशनी उसका पाँव पकड़ लेती है।

बिशनी : नहीं, तू इसे नहीं मार। देख इसका शरीर कितना घायल है! तू भी तो आदमी है। तेरा भी घर-बार होगा। तेरी भी माँ होगी। तू माँ के दिल को नहीं समझता? मैं अपने बच्चे को अच्छी तरह से जानती हूँ। यह दिल का बहुत भोला है। इसकी किसी के साथ दुश्मनी नहीं है।

सिपाही हँसता है।

सिपाही : इसकी किसी के साथ दुश्मनी नहीं है?...यह देख **(बटन खोलकर अपना लहू से तरबतर सीना दिखाता है)** ये सब घाव इसी के किये हुए हैं। मैं इन घावों से कब का मर चुका होता। लेकिन मैं सिर्फ़ इसे मारने के लिए जिन्दा हूँ। इसे मारे बिना मैं नहीं मरूँगा।

बिशनी : तू बात क्यों नहीं समझता? मैं इसकी माँ हूँ। मैं इसे अच्छी तरह जानती हूँ। यह किसी दुश्मनी से लड़ाई में नहीं गया। इसे मैंने लड़ाई में भेजा था।...इसकी बहन अब ब्याहने जोग हो गयी है। छः महीने-साल में हमें उसका ब्याह करना है। हमारे घर की हालत बहुत खराब है। अगर लड़की के ब्याह की चिन्ता न होती तो हम लोग आधा पेट खाकर रह लेते पर मैं कभी इसे लड़ाई पर न भेजती। इस लड़के के सिवा घर में कोई कमाने वाला नहीं है। मैंने सोचा था कि

जायें तो बस छोटी से छोटी बात पर...।

राधा : वे नाराज़ होते हैं तो किसी बात पर ही नाराज़ होते हैं। मगर तुम कहते हो कि उन्हें न बताऊँ, तो मैं नहीं बताऊँगी। मगर यह बात ठीक नहीं कि सब दरवाज़े खुले हैं और तुम यहाँ अण्डे बना रहे हो। कोई बाहर से आ गया तो हमारा कहना न कहना सब बराबर है।

केतली में पानी खौलने लगता है। वीना अण्डे फेंटती है।

गोपाल : यह बात तुम ठीक कह रही हो, भाभी। मैंने कितनी ही बार इससे कहा है कि कुछ बनाना ही हो तो सब दरवाज़े बंद कर लिया करो। श्याम, बाहर का दरवाज़ा बंद कर दे।

वीना : श्याम, पहले ज़रा यह केतली स्टोव से उतार कर उधर रख दे और मुझे घी का डिब्बा पकड़ा दे। मैं झट से हलुआ पढ़ा दूं। बनने में तो दो एक मिनट ही लगेंगे।

श्याम उस तरफ़ चला जाता है और उसका काम करने लगता है।

अलमारी से प्लेटें भी निकाल लो। **(वीना से)** जीजी, थोड़ा-सा हलुआ तो तुम भी लोगी न?

फ्राइंग पेन स्टोव पर रखकर उसमें घी डालती है।

राधा : **(अनमने स्वर में)** भैया, हमने कह दिया कि हमने न कभी खाया है और न ही कभी खा सकते हैं। पास बैठे हैं, इसलिए चाय की एक प्याली ज़रूर ले लेंगे।

वीना अण्डे का घोल चीनी मिलाकर फ्राइंग पेन में डाल देती है और जल्दी-जल्दी हिलाने लगती है। श्याम प्लेटें निकाल कर लाता है।

वीना : तुमसे कहा था साथ किशमिश भी लाना, लाये हो?

श्याम : किशमिश तो भूल ही गया, भाभी। कहो तो अब जा कर...!

वीना : अब रहने दो। मुझसे यह नहीं कहना कि हलुआ अच्छा नहीं बना। बग़ैर किशमिश के अण्डे का हलुआ...!

दूर से जमुना देवी की आवाज सुनायी देती है :

जमुना : वीना! ओ वीना! गोपाल अभी आया है कि नहीं...?

गोपाल : **(दबे हुए स्वरों में)** श्याम! तुमसे कहा था दरवाज़ा बन्द कर दो और तुम...!

श्याम : अभी कर रहा हूँ।

जल्दी से जाकर दरवाजे के किवाड़ मिला देता है और वहीं खड़ा हो जाता है।

राधा : माँ जी आ रही हैं, अब जल्दी से कुछ इन्तज़ाम करो।

गोपाल : हाँ, हाँ, जल्दी कुछ इन्तज़ाम करो। यह छिलके...यह हलुआ...।

जल्दी से वीना का जम्पर उठाकर छिलकों पर डाल देता और चीनी की एक प्लेट लेकर फ्राइंग पेन को उससे ढँक देता है।

जमुना : वीना! ...वीना!

दरवाजे के पास आकर दरवाजे को धकेल कर खोलती है। श्याम कंधे हिला कर के पास से हट जाता है।

जमुना : क्या बात है, इस तरह दरवाज़ा बन्द क्यों कर रखा था? श्याम तो दरवाज़े के आगे ऐसे खड़ा था जैसे अन्दर किसी और को रोक रखा हो। क्या बात है, सब लोग इस तरह चुपचाप क्यों हो गये हो?

गोपाल : कु-कुछ नहीं, माँ! तु-तुम अ-आओ आओ। दरवाज़ा खुला ही था। श्याम तो ऐसे ही वहाँ खड़ा था। आओ, बैठो।

जमुना : आज दो घंटे से मेरे कमरे की छत चू रही है। मैंने कितनी

बार कहा था कि लिपाई करा दो, नहीं तो बरसात में तकलीफ़ होगी। मगर मेरी बात तो तुम सब लोग सुनी-अनसुनी कर देते हो। कुछ भी कहूँ, बस हाँ माँ, कल करा देंगे माँ, कहकर टाल देते हो। अब देखो चलकर कैसे हर चीज़ भीग रही है!...क्या बात है, सब लोग गुमसुम क्यों हो गये हो?... वीना, तू इस वक़्त यह चम्मच लिए क्यों खड़ी है? और गोपाल, तू वहाँ क्या कर रहा है कोने में?

गोपाल : कु-कुछ नहीं माँ, यह.. वह...वह वहाँ पर...क्या नाम है उसका...वह...वह...वीना का हाथ ज़रा जल गया था। मैं इसके लिए मरहम ढूँढ रहा था।

जमुना : हाथ जल गया? कैसे? मैं देखूँ तो।

पास जाकर वीना के दोनों हाथ पकड़कर देखती है।

वीना : नहीं माँजी, ऐसा कुछ नहीं जला है। ये तो बस यूँ ही...यूँ ही चिन्ता करने लगते हैं। बस ज़रा-सा ही था। हाथ से मल दिया, ठीक हो गया।

गोपाल : हाँ, वैसे तो बिल्कुल ठीक हो गया। मगर मैंने कहा कि मरहम मिल जाए तो फिर भी लगा दूँ। कभी वक़्त पर पता नहीं चलता और बाद में तकलीफ़ बढ़ जाती है। कहते हैं कि प्रिवेंशन इज़ बैटर दैन क्योर, मतलब कि बाद में इलाज करने से पहले एहतियात बरतना ज़्यादा अच्छा है। इसलिए मैंने सोचा कि एहतियात के तौर पर थोड़ी मरहम लगा दूँ।

जमुना : मगर इसका हाथ जला कैसे? इस वक़्त यह ऐसा क्या काम कर रही थी?

गोपाल : कुछ नहीं, कुछ नहीं। कर कुछ नहीं रही थी। श्याम ने कहा था ज़रा चाय बना दो तो उसके लिए चाय बना रही थी। यूँ चाय बनाने में हाथ जलना नहीं चाहिए, मगर बाज़ वक़्त होता है। जलना था, सो जल गया। वैसे चिन्ता की कोई बात नहीं। मैं

अभी मरहम लगा देता हूँ। और मरहम नहीं भी मिलता तो कोई बात नहीं। अपने आप ठीक हो जाएगा। बिल्कुल मामूली-सा भी क्या, यही समझो कि जला ही नहीं है। अब तो महसूस भी नहीं होता होगा। क्यों वीना ?

वीना : जी हाँ, बिल्कुल महसूस नहीं होता।

गोपाल : और क्या ? महसूस होने की कोई बात नहीं थी। तुम नाहक फिक्र कर रही हो अम्माँ, फिक्र करने की कोई बात ही नहीं है। तुम खुद देख रही हो, हाथ बिल्कुल ठीक हो गया है।

जमुना : मैं पहले ही कह रही थी कि यह मरदूद बिजली का चूल्हा घर में न लाओ। मगर माँ की बात किसी के कान में जाती हो तो न ! यह मरदूद हाथ नहीं जलाएगा, तो करंट मारेगा, करंट नहीं मारेगा तो हाथ जलाएगा। हमारे ज़माने में किसी ने ऐसी चीज़ों का नाम भी नहीं सुना था ...यह इसके ऊपर क्या रखा है ?

गोपाल : यह स्टोव के ऊपर ? यह...यह...अम्माँ फ्राइंग पेन है... फ्राइंग पेन...मतलब तलने की वह...क्या कहते हैं, वह...।

जमुना : तलने की क्या ? क्या बहू यहाँ अलग से तुम्हें चीज़ें तल-तल कर खिलाती है ? लगता है इसमें कोई चीज़ बनाकर रखी है। **(पास जाती हुई)** मैं भी तो देखूँ कि नयी बहू क्या-क्या बना कर खिलाती है।

फ्राइंग पेन से प्लेट उठाने लगती है। गोपाल जाकर उसे बीच में ही रोक देता है।

गोपाल : न न न न न अम्माँ, इसे हाथ मत लगाना, हाथ मत लगाना। तु-तुम आप ही कह रही थीं कि यह हाथ नहीं जलाएगा तो करंट मारेगा, और करंट नहीं मारेगा तो हाथ जलाएगा। ऐसी मरदूद चीज़ का कुछ पता थोड़े ही है, अम्माँ ! मैं तो

पछता रहा हूँ कि क्यों इसे घर में ले आया। वह वापस ले ले तो मैं अभी जाकर इसे वापस कर दूँ। मुझे पता थोड़े ही था कि इसकी वजह से...।

श्याम इस बीच चारपाई से चन्द्रकान्ता उठाकर उसके पन्ने पलटने लगता है। एक बार राधा की ओर देखकर वह थोड़ा खखारता है। राधा गम्भीर मुद्रा बनाए बैठी रहती है।

जमुना : मगर यह तो बुझा हुआ है। यह बुझा हुआ भी करंट मारता है क्या ?

गोपाल : हाँ अम्माँ, कभी-कभी यह बुझा हुआ भी करंट मार देता है। इसका कोई भरोसा थोड़े ही है ? ऐसी चीज़ से दूर ही रहा जाए तो अच्छा है। कहीं तुम्हारा भी हाथ जल-जला गया तो मुसीबत होगी।

जमुना : अच्छा नहीं हाथ लगाती। मगर बता तो सही कि इस पर छोटी बहू तेरे लिए बनाती क्या-क्या है। इस वक़्त भी तो कुछ बना रखा है।

गोपाल : कुछ नहीं अम्माँ, इसमें कुछ ख़ास चीज़ नहीं है। वह श्याम ज़रा कह रहा था, तो उसके लिए...।

श्याम : **(सहसा चौंककर जैसे सफ़ाई देता हुआ)** भैया, मैंने कहाँ कहा था ? वह तो खुद भाभी का ही ख्याल था। क्यों भाभी ?

वीना : हाँ, हाँ, मैं कब कहती हूँ कि मैंने नहीं कहा था ? ठीक है, मैंने ही तुमसे कहा था...!

राधा सहसा उठकर पास आ जाती है।

राधा : वीना ने भी नहीं, बल्कि हमने कहा था...!

गोपाल : **(जैसे आसमान से गिरकर)** भाभी !

राधा : हाँ, हाँ, ठीक बात तो है। हमीं ने वीना से ज़ोर देकर कहा था कि पुलटिस बनाकर श्याम के बाँध दो। इसे अपने तन-

बदन की होश तो रहती नहीं। क्रिकेट खेलने में कहीं टखने पर गेंद लग गयी है। दो दिन से कह रहा है कि चलने में ज़ोर पड़ता है। हमने कहा कि ठंड का दिन है, कहीं दर्द बढ़-बढ़ा गया तो बैठकर दो दिन हमीं से मालिश करवाते रहेंगे। वीना ने पुलटिस बना दिया है। अभी बाँध देंगे तो रात तक ठीक हो जाएगा।

गोपाल कृतज्ञता के भाव से राधा की तरफ़ देखता है।

गोपाल : यही तो मैं कह रहा था। यह लड़का अपनी सेहत का ज़रा ख़्याल नहीं रखता। बाद में जब ज़्यादा बिगाड़ हो जाता है तो मुसीबत घर वालों की होती है। **(श्याम को आँख से इशारा करके)** अब पुलटिस बँधवा कर चुपके से लेट रहना। समझे ?

जमुना : लाओ मैं ही पुलटिस बाँध देती हूँ। काई पुराना कपड़ा-वपड़ा हो तो दो। कहीं कोई नयी धोती न फाड़ देना।...यह देखो, नये कपड़ों का क्या हाल कर रखा है ? यह रेशमी जम्पर मेज़ पर क्यों डाल रखा है ? यह मेज़ साफ़ करने के लिए है ?

मेज़ से जम्पर उठाना चाहती है। मगर गोपाल फिर बीच में आकर रोक देता है।

गोपाल : रहने दो, रहने दो अम्माँ, क्या गज़ब करती हो ? ये काम तुम्हारे करने के हैं जो तुम कर रही हो ? मैला कपड़ा है, खूँटी से मेज़ पर गिर गया होगा। अभी वीना उठाकर रख देगी।

जमुना : यह मैला कपड़ा है ? और वहाँ उतनी दूर खूँटी से कूदकर यहाँ मेज़ पर आ गया ? तुम लोगों के लच्छन ज़रा भी मेरी समझ में नहीं आते। नया जम्पर है, अभी दो बार भी नहीं पहना होगा, और इस तरह यहाँ गिरा रखा है। हटो, तुम

लोग घर उजाड़ने पर तुले हो, तो मुझे तो घर की चिन्ता है। इतने कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, इनमें टिड्डियाँ लग जाएँगी तो ?

फिर जम्पर उठाने लगती है, मगर गोपाल उसे कंधे से पकड़ कर पलँग की तरफ़ ले चलता है।

गोपाल : अम्माँ, नहीं लगेंगी टिड्डियाँ। तुम तो ख़ामख़ाह चिन्ता करती हो। यहाँ पलँग पर बैठो और थोड़ी देर आराम करो। बैठो, बैठो...यह इस तरफ़...!

उसे दोनों कंधों से पकड़कर पलँग पर बिठा देता है।

जमुना : हाँ, हाँ, बैठकर आराम करूँ और मेरी जगह काम कोई दूसरा करेगा। घर में करने को इतने काम पड़े हैं। इसे पुलटिस बाँध दूँ तो जाऊँ। दूसरों की मुसीबत कर देता है और आप किताबें पढ़ता रहता है।...ला, मुझे दे यह किताब और यहाँ आकर लेट जा।

उठकर श्याम के हाथ से किताब ले लेती है।

यह कौन-सी किताब है ?

श्याम : यह किताब ?...यह अम्माँ...यह मेरे कोर्स की...मतलब मेरे कोर्स की किताब नहीं है यह...शायद यह भाभी की किताब है...।

वीना : यह जीजी की गुटका रामायण है, माँजी ! जीजी पढ़ती-पढ़ती यहाँ ले आयी थीं।

श्याम : हाँ, हाँ, हाँ ! भाभी की गुटका रामायण ही तो है। मैं कह रहा था कि लगती तो गुटका रामायण जैसी ही है।

जमुना : मगर गुटका रामायण तो बहुत छोटी होती है। यह तो इतनी बड़ी किताब है।

श्याम : हाँ अम्माँ, पहले यह छोटी थी, अब यह...मेरा मतलब है अम्माँ कि इसका पहला एडीशन छोटा था, मगर जो नया एडीशन आया है, वह पहले से बड़ा है। इनके साइज़ बदलते रहते हैं, यह कोई खास बात नहीं है! चलो अम्माँ, तुम्हें बहुत काम है, मैं तुम्हें तुम्हारे कमरे में पहुँचा दूँ गैलरी में अँधेरा है, कहीं पैर उल्टा-सीधा पड़ गया तो और मुसीबत होगी।

चलने को तैयार हो जाता है।

जमुना : पाँव मेरा उल्टा पड़ेगा या तेरा जिसे चोट लगी है ? मैं कह रही हूँ लेट जा, और वह मुझे कमरे में छोड़ने जाएगा।

श्याम : अरे हाँ ! मेरे तो पाँव में चोट लगी है। मैं यह बात भूल ही गया था। मैं भाभी से पुलटिस बँधवाता हूँ। गोपाल भैया तुम्हें छोड़ आते हैं।

गोपाल : हाँ, अम्माँ, चलो मैं छोड़ आता हूँ।

जमुना : मगर मैं कहती थी कि मैं इसे पुलटिस बाँध देती...।

गोपाल : उसकी तुम चिन्ता न करो, अम्माँ। वीना बहुत अच्छी तरह बाँध देगी। आओ, मेरा हाथ पकड़कर साथ-साथ आ जाओ। गैलरी में वाकई बहुत अँधेरा है।

बाँह पकड़कर उसे साथ ले चलता है। उसके बाहर निकलते ही श्याम फ्राइंग पेन पर झपट पड़ता है।

श्याम : भाभी, मैं ज़रा जल्दी से यह पुलटिस निगल लूँ। अगर बड़े भैया भी आ गये तो कहीं सचमुच ही इसे टख़ने पर न बँधवाना पड़े।

वीना : ठहरो, ज़रा सब्र से काम लो, उन्हें भी आ जाने दो।

श्याम : ग़लत बात है।

चम्मच भर-भर कर हलुआ मुँह में डालने लगता है।

भाभी, सच कहता हूँ कि बग़ैर किशमिश के भी इतना मज़ेदार

बना है, इतना मज़ेदार बना है कि जितनी तारीफ़ करूँ थोड़ी है।

गोपाल घबराया-सा जल्दी-जल्दी आता है।

गोपाल : इस पुलटिस को जल्दी से इधर-उधर करो, भैया आ रहे हैं।

श्याम : पुलटिस की तो आप ज़रा चिन्ता न करें। इसे तो मैं अभी साफ़ किए देता हूँ, आप छिलकों के इन्तज़ाम की सोचें।

जल्दी-जल्दी खाता है। गोपाल जम्पर उठाकर वीना को देता है।

गोपाल : इस जम्पर को उधर रखो और ये छिलके...इन्हें तुम जल्दी से मेरे किसी मोज़े में डाल दो।

वीना : मगर आपके सब मोज़े तो पहले ही पुराने छिलकों से भरे हुए हैं।

गोपाल छिलके मेज़ से उठा लेता है और उन्हें हाथों में लिए हुए असमंजस में इधर-उधर देखता है।

गोपाल : तो और किस चीज़ में डाल दें? मेरा टोप ही ले आओ, या जल्दी से मेरे कोट की जेब में भर दो।

सहसा माधव गैलरी से अन्दर आ जाता है।

माधव : क्यों भाई, क्या भर रहे हो कोट की जेबों में? कोई मेरे न देखने की चीज़ तो नहीं?

गोपाल : **(हताश भाव से)** आइए, आइए भैया। आ जाइए, आ जाइए। मैं यूँ ही ज़रा इन लोगों से मज़ाक कर रहा था।

माधव : मज़ाक कर रहे थे कि छिलके तुम्हारी जेब में छिपा दिये जायें।

हँसता हुआ स्टोव की तरफ़ जाता है।

गोपाल : जी हाँ...जी नहीं...मज़ाक नहीं...मेरा मतलब यह है कि...!

माधव : तुम्हारा मतलब मैं समझता हूँ। और तुम क्या खाकर मुँह पोंछ रहे हो श्याम बाबू ?

श्याम : मैं ? मैं भैया...यह मेरे लिए...मेरे लिए भाभी ने पुलटिस बनायी थी...।

माधव : पुलटिस बनायी थी ? और तुम वह पुलटिस गले से नीचे उतार गए ! (**हँस कर**) खूब ! तो आजकल पुलटिस खाने के काम भी आने लगी। भला यह तो बताओ कि किस चीज़ की पुलटिस थी ? जिस चीज़ के यह छिलके हैं, उसी की या...?

श्याम बिल्कुल घबरा जाता है।

श्याम : भैया, थी तो यह पुलटिस ही, मगर जल्दी में मैंने...मेरा मतलब है कि मैंने जल्दी में...।

माधव : तुमने जल्दी में सोचा कि इसे खा डाला जाय ! (**फिर हँस कर**) बहुत अच्छा किया। बनी हुई चीज़ का कोई तो इस्तेमाल होना ही चाहिए। और तुम गोपाल, तुम ये छिलके जेब में क्यों भरते हो ? बाहर जाकर इन्हें नाली में डाल दो। आगे से डिब्बे में भरकर बाहर ले जाने की ज़रूरत नहीं...।

गोपाल : मगर भैया...!

माधव : भैया सब जानते हैं, राजा ! वे यह भी जानते हैं कि तुम्हारे बायें हाथ की उँगलियाँ किस तरह पीली हुई हैं। यह भी जानते हैं कि श्याम बाबू का दूध कमरे में क्यों जाता है। और यह भी जानते हैं कि उनके सो जाने पर उनकी बीवी मोमबत्ती जलाकर कौन-सी किताब पढ़ा करती है।

सबके मुँह से आश्चर्य से तरह-तरह के शब्द निकलते हैं। माधव हँसता रहता है।

गोपाल : भैया, अब आप से क्या छिपाना है, आप तो सब कुछ जानते हैं। मगर देखिए, अम्माँ से नहीं कहिएगा। अम्माँ को पता चल गया तो बस किसी की खैर नहीं...।

माधव : अम्माँ से न कहूँ ? (हँसकर) तुम समझते हो कि अम्माँ यह सब नहीं जानतीं ?

श्याम और गोपाल : ऐं ? अम्माँ भी जानती हैं ?

माधव : क्यों नहीं जानतीं ? अम्माँ तो शायद मेरी वे बातें भी जानती हैं जो मैं समझता हूँ कि वे नहीं जानतीं। **(हँसकर)** आज से छिलके नाली में डाल दिया करो, इनके लिए डिब्बा रखने की ज़रूरत नहीं।...और जहाँ तक अम्माँ का सवाल है, अम्माँ इन्हें नाली में पड़े हुए भी नहीं देखेंगी।

हल्की-हल्की हँसी हँसता रहता है।

सिपाही की माँ

पात्र

बिशनी
मुन्नी
कुन्ती
दीनू
१ लड़की
२ लड़की
मानक
सिपाही

देहात के घर का आँगन, अँधेरा और सीलदार। आँगन के बीचोबीच एक ख़स्ताहाल चारपाई पड़ी है। एक और वैसी ही चारपाई दीवार के साथ रखी है। दायें कोने में दो-तीन मिट्टी की हँडियाँ पड़ी हैं। सामने एक लकड़ी का टूटा हुआ दरवाज़ा है, जो घर के अन्दर खुलता है। दरवाज़े पर एक अँगोछा और चारपाई पर एक फटी हुई धोती सूख रही है। बायीं ओर बाहर जाने का रास्ता है, जिसमें किवाड़ नहीं हैं।

पर्दा उठने पर बिशनी चारपाई के पास मोढ़े पर बैठी चरख़े पर सूत कातती दिखायी देती है। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हैं और बाल सब सफ़ेद हो चुके हैं। मुन्नी उसकी चौदह बरस की लड़की, बाहर की चौखट से सट कर खड़ी है। उसकी हरे रंग की सलवार कमीज़ बहुत मैली हो रही है।

कुछ क्षण चरख़े की आवाज़ और कबूतरों की गुटर-गूँ सुनायी देती है। बीच-बीच में बिशनी थोड़ा खाँस लेती है। फिर घोड़ा-गाड़ी के दूर से आने और रुकने का शब्द सुनायी देता है।

मुन्नी : (पीछे की ओर मुड़ कर उत्तेजित स्वर से) डाक वाली गाड़ी आ गयी, माँ! मैं अभी चिट्ठी पूछ कर आती हूँ।

मुन्नी बाहर चली जाती है। बिशनी आँखें मूंद कर हाथ जोड़ लेती है।

कबूतरी की गुटर-गूँ का स्वर पहले तेज़ होकर फिर मन्द हो जाता है।

बिशनी आँखें खोलकर दरवाज़े की ओर देखती है। मुन्नी निराश और थकी-सी लौट कर आती है।

बिशनी : क्यों री, डाक वाली गाड़ी ही थी ?

मुन्नी : हाँ, डाक वाली गाड़ी ही थी !

घोड़ा गाड़ी के चलने और क्रमशः दूर होने का शब्द सुनायी देता है। मुन्नी बिशनी के मोढ़े के पास फ़र्श पर बैठ जाती है। बिशनी के चेहरे की रेखाएँ गाढ़ी हो जाती हैं।

बिशनी : **(ठंडी साँस लेकर)** आज भी चिट्ठी नहीं आयी ! जाने भाग में क्या लिखा है ?

मुन्नी : आज सिरफ चौधरी का पिलसन का मनीआर्डर आया है। और कोई चिट्ठी नहीं आयी।

बिशनी : ये मुए जाने चिट्ठी रास्ते में रख लेते हैं कि क्या करते हैं ? मेरा मानक तो ऐसा नहीं कि दो-दो महीने चिट्ठी ही न लिखे। पहले हर पंद्रहवें रोज चिट्ठी आ जाती थी। अबकी न जाने कौन पहाड़ रास्ते में खड़ा हो गया है ? कम से कम अपनी राजी-खुशी तो लिख देता।

मुन्नी : माँ, मेरा दिल कहता है कि अगले मंगल को भैया की चिट्ठी जरूर आएगी।

बिशनी : तेरा दिल तो हर मंगल को कहता है, पर चिट्ठी आने का नाम नहीं लेती। जाने भाग में क्या खोट है जो चिट्ठी के लिए इतना तरसना पड़ता है। इस बार यह घर आ ले, फिर मैं इस से पूछूँगी...

मुन्नी : पिछली चिट्ठी में भैया ने लिखा था कि वे ब्रम्मा की

लड़की ब्याही जाएगी तो फिर इसे लड़ाई पर नहीं जाने दूँगी। फिर मैं इसका भी ब्याह कर दूँगी और इसे अपने पास घर में रखूँगी। मुझे क्या पता था कि इसकी लड़ाई में जाकर ऐसी हालत हो जाएगी? आज यह इस हाल में घर आया है। मैं इसे आज अपने से कैसे अलग कर सकती हूँ? इसकी जगह तू होता तो तेरी माँ तुझे अपने से अलग होने देती?

सिपाही : मेरी माँ...? **(ज़रा-सा हँस कर)** मेरी माँ अब पागल हो गयी है। वह रोज़ मेरी मौत का इन्तज़ार करती है। वह हँसकर कहती है कि थोड़े दिनों में मेरे बेटे की लाश घर आएगी। मेरी बीवी ने अभी से बेवा का स्वाँग बना लिया है। उसने मुझे लिखा है कि जिस दिन वह मेरे मरने की खबर सुनेगी उस दिन गले में फाँसी लगाकर मर जाएगी। उसके पेट में छः महीने का बच्चा है। उसके साथ ही वह भी मर जाएगा। **(फिर से सीना खोल कर दिखाता है।)** और तेरे लड़के ने देख मेरा क्या हाल किया।...यह अभी भी मेरे खून का प्यासा है। इसकी आँखों को देख। इसकी आँखों में तुझे वहशियाना चमक दिखाई नहीं देती?

बिशनी : नहीं-नहीं, इसकी आँखें ऐसी नहीं हैं। इस समय इसकी आँखें ऐसी लगती हैं। पर इनका असली रंग ऐसा नहीं है।...

सिपाही : तू इसकी आँखों का रंग नहीं पहचानती। तू इसकी माँ हैं, पर तू इस रंग का मतलब नहीं जानती। इसकी आँखों में दुश्मनी है। जब तक मैं सामने हूँ इसकी आँखों का रंग नहीं बदलेगा। देख यह कैसे आँखों में खून भरकर मुझे देख रहा है।

मानक सहसा अपने को झटककर उठ

खड़ा होता है। वह सिपाही का गला दबाने के लिए उस पर झपटना चाहता है पर सिपाही झट से बन्दूक का कुन्दा फिर तान लेता है। बिशनी जल्दी से बन्दूक के कुन्दे के आगे आ जाती है।

बिशनी : नहीं, तू इसे नहीं मारेगा। तुझे तेरी माँ की सौगन्ध, तू इसे नहीं मारेगा।

सिपाही : मैं इसे नहीं मारूँगा तो यह मुझे मार देगा। तू यही चाहती है ?

बिशनी : नहीं यह तुझे नहीं मारेगा। मैं इसकी माँ हूँ। मैं इसे जानती हूँ। यह तुझे कभी नहीं मारेगा...

मानक : **(वीभत्स स्वर में)** मैं इसे नहीं मारूँगा ? **(रौद्र भाव से आगे बढ़ता हुआ)** नहीं ! मैं इसे ज़रूर मारूँगा, मैं अभी इसके टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।

आगे बढ़कर सिपाही को धक्का देता है जिससे वह लड़खड़ाकर पीछे गिर जाता है और बन्दूक उठा लेता है और उसका कुन्दा सिपाही के सीने की ओर तान देता है।

मानक : मैं वहशी हूँ ! मैं जानवर हूँ ! मैं वहशी और जानवर से भी बढ़कर हूँ। इस तरह मेरी तरफ क्यों देख रहा है ? उठ, उठकर मुझे ठोकर लगा...

उसी तरह हँसता है जैसे वह सिपाही हँस रहा था। बिशनी जल्दी से बन्दूक के कुन्दे के सामने आ जाती है।

बिशनी : नहीं मानक, तू इसे नहीं मारेगा ! यह भी हमारी तरह ग़रीब आदमी है। इसकी माँ इसके पीछे रो-रो कर पागल हो गयी है। इसके घर में बच्चा होने वाला

है। यह मर गया तो इसकी बीवी फाँसी लगाकर मर जाएगी...

मानक बिशनी को झटक कर बीच में से हटा देता है।

मानक : मैं इसे नही छोड़ूंगा। यह दुश्मन है। मैं इसको अभी मार दूंगा, अभी। यहीं...

बिशनी : नहीं मानक, तू इसे नहीं मारेगा...

फिर बीच में आने का प्रयत्न करती है पर मानक उसे फिर झटक कर हटा देता है। बिशनी चारपाई पर गिर कर हाथ में मुँह छिपा लेती है। सिपाही पार्श्व की ओर हटता है। मानक उसके साथ-साथ आगे बढ़ता है।

मानक : मैं इसे अभी मार दूंगा। अभी इसकी बोटी-बोटी अलग कर दूंगा...

सिपाही और मानक की आकृतियाँ धीरे-धीरे पार्श्व में जाकर विलीन हो जाती हैं। बिशनी हाथों में मुँह छिपाए हुए चिल्ला उठती है।

बिशनी : मानक! मानक!

एक साथ चार-छः गोलियाँ चलने और उसके साथ सिपाही के कराहने का शब्द सुनायी देता है। सहसा खामोशी छा जाती है। बिशनी फिर उसी तरह चिल्लाती है।

बिशनी : मानक! मानक!

मुन्नी जल्दी से करवट बदलकर उठ बैठती है।

मुन्नी : (घबराए हुए स्वर में) माँ !

बिशनी : (उसी तरह) मानक !

मुन्नी जल्दी से उठकर ढिबरी जला देती है। प्रकाश का रंग हल्के नीले से फिर पीला हो जाता है। मुन्नी बिशनी की चारपाई पर आ बैठती है।

मुन्नी : क्या बात है माँ ?

बिशनी आँखों से हाथ हटाकर चुंधियायी-सी नजर से चारों ओर देखती है।

बिशमी : (कुछ खोजती सी) मानक !

मुन्नी : तुम रोज भैया के ही सपने देखती हो माँ ? मैंने तुमसे कहा था अगले मंगल को भैया की चिट्ठी जरूर आएगी।

बिशनी : (जैसे आत्मगत) चिट्ठी आएगी ?...और वह आप...?

मुन्नी : थोड़े दिनों में भैया आप भी आएँगे। तुम आप ही कहती थीं कि वे जल्दी आएँगे और मेरे लिए कड़े और चूड़ियाँ लाएँगे..

बिशनी : कड़े और चूड़ियाँ ?...ओ मुन्नी !

उसे अपने साथ सटा लेती है और आँखों से टप-टप पानी बरसने लगता है।

मुन्नी : भैया मेरे लिए जो कड़े लाएँगे, वे तारो और बन्तो के कड़ों से भी अच्छे होंगे न, माँ ?

बिशनी आँखें बंद करके नकारात्मक भाव से सिर हिलाती है पर शीघ्र ही अपने को सँभाल लेती है।

बिशनी : हाँ बेटी, तेरे कड़े सबके कड़ों से अच्छे होंगे।

मुन्नी : सुच्चे मोतियों के कड़े होंगे न, माँ ?

बिशनी : हाँ बेटी, सुच्चे मोतियों के कड़े...

उसका माथा चूमकर उसे अलग हटा देती है।

अब सो जा, अभी बहुत रात बाकी है।

मुन्नी अपनी चारपाई पर चली जाती है। बिशनी उठकर ढिबरी बुझा देती है। उसके ढिबरी बुझाते ही गहरा अँधेरा छा जाता है। अँधेरे में बिशनी के बुदबुदाने का स्वर सुनाई देता है।

बिशनी : ताती वा ना लगाई, पार ब्रह्म सहाई।
राखनहारे राखिआ, प्रभु व्याधि मिटाई...

पर्दा गिरता है।

प्यालियाँ टूटती हैं

पात्र

माधुरी और **मीरा** दोनों बहनें सुंदर हैं, दोनों की वेशभूषा भी सुरुचिपूर्ण है। माधुरी बड़ी होती हुई भी बड़ी नहीं लगती, बल्कि बातचीत और व्यवहार में मीरा की अपेक्षा ज़्यादा नये रंग में रची हुई प्रतीत होती है। फिर भी उसमें आत्मविश्वास कम है और उसके चेहरे से ही प्रतीत होता है कि उसमें हीनता की भावना है।

पम्मी तेरह-चौदह बरस की लड़की है। उसका बात करने का ढंग ऐसा है, जैसे लाड़ कर रही हो। बाल कटे हैं और जाँघों तक का फ़ाक पहनती है।

दीवानचंद बुज़ुर्ग आदमी है। चेहरे से उसकी उम्र का अन्दाज़ा नहीं होता, जो पचास से पैंसठ के बीच कुछ भी हो सकती है। दाढ़ी के सब बाल सफ़ेद हैं और लगता है उसने कई महीने से हजामत नहीं बनवायी। कपड़े भी काफ़ी मैले हैं। बातें करते हुए उसकी आँखें बार-बार मुंद जाती हैं।

भोलानाथ दुनियादार आदमी है और बड़ी उम्र .के बावजूद चुस्त दिखायी देता है। मूँछ गहरी काली हैं और साफ़ पता चलता है कि उन्हें ख़िज़ाब से रंगा गया है। वह उन आदमियों में है, जो अपने को काफ़ी महत्त्वपूर्ण समझते हैं और दूसरों से व्यंग्यपूर्ण ढंग से बात करते हैं।

महिपत में वे सब विशेषताएँ हैं, जो एक अमीर घर के नौकर में आम तौर पर पायी जाती हैं।

मंच

एक नये बने हुए बंगले का पीछे की तरफ़ का बरामदा, जिसके आगे छोटा-सा लॉन है। बरामदे में दो बड़े-बड़े दरवाज़े हैं जो अन्दर कमरों में खुलते हैं। जब कोई भी दरवाज़ा खुलता है, तो आगे नीले रंग का फूलदार पर्दा दिखायी देता है। दरवाज़ों और ऊपर के रोशनदानों की बनावट बिल्कुल आधुनिक क़िस्म की है।

बरामदे से लॉन में आने के लिए एक पैड़ी नीचे उतरना पड़ता है।

लॉन में दोनों ओर गमलों की पंक्तियाँ तरतीबवार रखी हैं, जिनमें डेलिया, गुलाब, फ्लाक्स और पापी आदि फूल लगे हैं। बरामदे के साथ-साथ भी गमलों की एक पंक्ति लगी है।

एक छतरी लॉन के बीच में रखी है, जिसके इर्द-गिर्द छः-सात बेंत की आराम-कुर्सियाँ पड़ी हैं। साथ दो गोल तिपाइयाँ हैं, जिन पर सुन्दर मेज़-पोश बिछे हैं। दायीं ओर सफ़ेद कपड़े से ढकी हुई बड़ी मेज़ है, जिस पर चाय का सामान लगाया जा रहा है।

समय

अप्रैल के महीने में एक दिन बाद दोपहर।

पर्दा उठने पर माधुरी चाय वाली मेज़ के पास व्यस्त दिखाई देती है। मीरा छतरी के पास कुर्सी पर बैठी एक फिल्मी पत्रिका के पन्ने उलट रही है। प्यालियों को ठीक-से रखने की चेष्टा में एक प्याली माधुरी के हाथ से गिरकर टूट जाती है।

माधुरी : लो एक और प्याली टूट गयी।

मीरा बिना सिर उठाए पत्रिका के पन्ने पलटती रहती है।

मीरा : तो क्या हुआ ? प्यालियाँ तो टूटती ही रहती हैं।

माधुरी : जब एक-के-बाद-एक इस तरह प्यालियाँ टूटती हैं तो ज़रूर कोई-न-कोई अनिष्ट होता है।

मीरा पत्रिका तिपाई पर फेंककर माधुरी की ओर देखती है।

मीरा : प्याली टूट गयी, यही अनिष्ट है। बाकी तो मन का वहम होता है।

माधुरी गिरी हुई प्याली का एक टुकड़ा उठा लेती है।

माधुरी : साठ रुपये का सेट आया था, तबाह हो गया।

मीरा हल्की-सी जम्हाई लेती है।

मीरा : पुरानी चीज़ तबाह हो, तभी तो नयी आती है। नया आ जाएगा।

माधुरी : ये टुकड़े उठवा दूं। **(आवाज़ देकर)** महिपत !

दायीं ओर का दरवाज़ा खुलता है और महिपत जल्दी में आता है।

महिपत : जी !

बरामदे से उतरते हुए ठोकर खाकर गिरने लगता है, मगर किसी तरह सम्भल जाता है।

माधुरी : सम्भल कर नहीं चला जाता ? अभी मुँह के बल गिर पड़ता।...ये प्याली के टुकड़े यहाँ से साफ़ कर।

हाथ का टुकड़ा फेंक देती है।

महिपत : एक और प्याली टूट गयी ?

माधुरी : हाँ।

महिपत : आज आपके हाथ से बहुत प्यालियाँ टूट रही हैं।

माधुरी : तुझसे टुकड़े उठाने के लिए कहा है। बात करने को किसने कहा है ?

महिपत : जी, उठा तो रहा हूँ।

माधुरी : अच्छी तरह देख लेना, कोई टुकड़ा रह न जाय।

महिपत टुकड़े बीन कर खड़ा होता है।

ये टुकड़े फेंक कर कपड़े बदल ले। अभी मेहमानों के आने का वक़्त हो रहा है।

महिपत : जी !

चला जाता है। माधुरी मीरा के निकट आ जाती है।

माधुरी : मीरा, आज मेरा मन कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा है। सिर भी भारी है। न जाने क्यों ?

मीरा : थोड़ी देर कुर्सी पर बैठकर आराम कर लो। ठीक हो जाओगी।

माधुरी कुर्सी पर बैठ जाती है।

माधुरी : मिसेज़ मेहता को चाय के लिए कहकर मैंने तो मुसीबत

मोल ले ली है।

मीरा पत्रिका पर झुककर फिर पन्ने पलटने लगती है।

मीरा : क्यों ? इसमें घबराने की ऐसी क्या बात है ? तुम्हारे यहाँ तो रोज़ किसी-न-किसी की चाय रहती है।

माधुरी : पर तुम मिसेज़ मेहता को जानती नहीं हो। बहुत नख़रे वाली औरत है।

मीरा : नख़रे वाली है तो क्या हुआ ? तुम्हारी चाय भी तो कम नख़रे की नहीं होती...।

माधुरी : फिर भी उस औरत का कुछ नहीं कहा जा सकता। तुम्हारे सामने मुस्कराती रहेगी और हर चीज़ देखकर 'हऊ नाइस', 'हऊ ब्यूटीफुल' कहती रहेगी। बाद में दूसरे लोगों के सामने तरह-तरह से मज़ाक उड़ाएगी।

मीरा : तुम्हें तो ख़ामख़ाह का कॉम्प्लेक्स है, दीदी। अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज़ पर भी तुम्हें भरोसा नहीं होता। तुम्हारी वह किस चीज़ का मज़ाक उड़ाएगी ?

माधुरी : यह मैं नहीं जानती। मैंने दोनों सेट महिपत से अच्छी तरह स्टीम कराये हैं। सवेरे लॉन की घास भी कटवायी थी। टूटे हुए गमले उठवा दिए हैं। फिर भी उसकी नज़र कुछ-न-कुछ ढूंढ ही निकालती है। अपने रहन-सहन का उसे बहुत गुमान है।

मीरा पत्रिका हाथ में लिए हुए पीछे टेक लगा लेती है।

मीरा : होने दो। तुम्हारा रहन-सहन किसी से कम नहीं है। तुम्हारे जैसा लॉन किसी का क्या होगा ? मेरा ही दिल देखकर ईर्ष्या से भर जाता है।

जम्हाई लेकर गमलों की तरफ़ देखती है और सहसा उठ खड़ी होती है।

यह तुम्हारी पापी बहुत खूबसूरत है। अभी मंगवायी है ?

पास जाकर पापी के फूलों को सहलाने लगती है।

माधुरी : यह विलायती पापी है। मिसेज़ राबिन्सन के बाग़ से आयी है।

मीरा : इतनी खूबसूरत पापी मैंने आज तक नहीं देखी।

माधुरी उठकर उसके निकट चली जाती है।

माधुरी : मेरे यहाँ तो इसके दो ही पौधे हैं। मिसेज़ राबिन्सन के यहाँ पूरी-की-पूरी रो इस पापी की है।

मीरा : हाँ, सुना है मिसेज़ राबिन्सन को फूलों का बहुत शौक है।

माधुरी : उसने बाकायदा अपनी नर्सरी बना रखी है। जानती हो उसकी नर्सरी में कितनी तरह का गुलाब है ? कम-से-कम पचास तरह का। बिल्कुल काला और बिल्कुल सफ़ेद गुलाब तुमने देखा है ? बहुत खूबसूरत होता है। मिसेज़ राबिन्सन सैकड़ों रुपया फूलों के बीज मंगवाने पर ख़र्च करती है।

मीरा : यही तो बेचारी की ज़िदगी है। फूल लगा ले या मिशन को दान दे दे।

माधुरी : टेस्ट की भी बात है। घर खूबसूरत हो तो इन्सान को अपना आप खूबसूरत लगता है। नहीं ?

फिर आकर कुर्सी पर बैठ जाती है। मीरा गमलों के पास टहलती रहती है।

मीरा : तुम्हारा घर किसी से कम खूबसूरत नहीं है। मिसेज़ राबिन्सन के यहाँ केवल फूल ही फूल हैं। तुम्हारे जैसे पर्दे और कार्पेट तो नहीं हैं।

माधुरी : लेकिन फिर भी मुझे अपना घर अधूरा-सा लगता है।

मीरा : तुम जैसी पर्फ़ेक्शन चाहती हो, वैसी पर्फ़ेक्शन दुनिया में

कहीं मिलती है, जीजी ?

माधुरी : मैं खुद नहीं जानती कि मैं क्या चाहती हूँ। लेकिन यह सब मुझे अधूरा-अधूरा-सा ज़रूर लगता है।

मीरा : यह केवल कॉम्प्लेक्स है और कुछ नहीं। मिस्टर और मिसेज़ मेहता को किस समय आना है ? साढ़े पाँच बजे न ?

माधुरी : और पाँच दस हो गये हैं।

मीरा : अभी पाँच दस ही तो हुए हैं। तुम इतना नर्वस हो जाती हो कि बस...।

माधुरी : नर्वस ? हाँ मीरा, मैं इस समय ज़रूर नर्वस हूँ। आज सुबह से मेरे हाथ से प्यालियाँ टूट रही हैं।

मीरा : तो क्या हुआ ? हर आदमी के हाथ से प्यालियाँ टूटती हैं।

माधुरी : हुआ कुछ नहीं...मगर...कुछ हो तो सकता है।

मीरा : क्या हो सकता है ?

माधुरी : क्या पता ? कुछ भी हो सकता है।

बायीं ओर का दरवाज़ा खुलता है और पम्मी बरामदे से उछलकर उनके पास आ जाती है।

पम्मी : ममी, वे उधर आये हैं, वे...।

माधुरी सहसा उठकर खड़ी हो जाती है।

माधुरी : मिस्टर और मिसेज़ मेहता आ गये ?

पम्मी : नहीं ममी, मिस्टर और मिसेज़ मेहता नहीं आये। वे आये हैं...स्यालकोट वाले मौसा जी।

माधुरी परेशान हो उठती है।

माधुरी : दीवानचंद ?...मीरा, मैं तुमसे क्या कह रही थी ?

मीरा : क्या ?

माधुरी : कि मेरे हाथ से प्यालियाँ टूट रही हैं तो ज़रूर कुछ-न-कुछ होगा।

मीरा : जीजा दीवानचंद के आने में ऐसी कौन-सी बात है, दीदी ?

कभी-कभार वे हमारे यहाँ भी इसी तरह चक्कर लगा जाते हैं।

माधुरी : वह तो ठीक है। लेकिन ये जब भी आते हैं तो मुझे न जाने कैसा-कैसा लगता है।

मीरा : कैसा लगता है?

माधुरी : न जाने कैसा? इन्हें देखकर मुझे एक घिनौनी-सी सिहरन होती है।

मीरा : तो उसमें क्या है? इनकी चाल-ढाल और पहरावा ही ऐसा है।

माधुरी : ये जैसे उन गुज़रे हुए दिनों की छाया हैं।...आज मिस्टर और मिसेज़ मेहता की पार्टी है, और ये बेवक़्त यहाँ पहुँचे हैं। वे लोग इन्हें यहाँ देख लें, तो क्या सोचेंगे?

मीरा : तुम इन्हें उनके आने से पहले ही विदा कर दो।

माधुरी : इन्हें विदा होने-होने में एक घन्टा लगता है। अभी तो आये ही हैं। पम्मी, कपड़े-अपड़े कुछ ठीक पहने हुए हैं या उसी तरह...?

पम्मी : वही कपड़े जो हमेशा पहनकर आते हैं। मैला चीकट तहमद, ऊपर वैसी ही कमीज़ और गले में लाल अंगोछा।

माधुरी के चेहरे पर परेशानी की रेखाएँ गहरी हो जाती हैं।

माधुरी : बताओ मैं क्या करूँ? राधा दीदी के नाते से इन्हें बर्दाश्त करना पड़ता है, लेकिन ये हैं कि बस...।

पम्मी : आज माथे पर गेरू का तिलक भी लगाये हैं। कहते हैं चिंतपुरनी होकर आ रहे हैं।

माधुरी : ड्राइंग रूम में बैठे हैं?

पम्मी : नये सोफ़े पर पालथी मार कर बैटे हैं।

माधुरी : तुझे कुछ दिया-विया तो नहीं?

पम्मी : मुझे पास बुला रहे थे, लेकिन मैं गयी नहीं। मुझे उनके

कपड़ों से बदबू आती है।

माधुरी : बड़ी मुसीबत है। एक बार इनकी बातों का सिलसिला आरम्भ हो जाय, तो फिर समाप्त ही नहीं होता। हमेशा वही बातें—बीवी, स्यालकोट के दिन होते तो यह होता, वह होता। दीवानचंद आज भी शाह दीवानचंद होता। दीवानचंद की हवेली खड़ी होती।...दीदी चली गयी, लड़की पाकिस्तान में रह गयी, मगर ये मैले-चीकट शाह यहाँ पहुंच गये।

पम्मी : ममी, ऐसे आदमी को घर में नहीं आने देना चाहिए। देखो कितना बुरा लगता है।

माधुरी : अब यह ज़बर्दस्ती का रिश्ता है। किसी दिन दो-चार गुलाबजामुन ले आएँगे। किसी दिन खट्टे चनों का कुल्लढ़ भर लाएँगे। और जाते हुए एक मैला पुराना रुपये का नोट पम्मी के हाथ में दे जाएँगे। चार पैसे की चीज़ लाएँगे और मेरे कार्पेट अपने जूते से खराब कर जाएँगे। पम्मी, आज फिर कोई स्यालकोट का किस्सा सुना रहे हैं?

पम्मी : नहीं, आज पापा को चिंतपुरनी की यात्रा का हाल सुना रहे हैं।

माधुरी : इनकी चिंतपुरनी की यात्रा हो गई, और मिसेज़ मेहता दस जगह मेरा मज़ाक उड़ाती फिरेगी। कितने इन्सेंसिटिव लोग होते हैं।...मीरा, तुम वहाँ फूल सूंघ रही हो, मुझे बताओ मैं क्या करूँ?

मीरा : दीदी, मेरा इस पापी को देख-देखकर दिल नहीं भरता। शरारती बच्चों की तरह मुँह खोलकर हँसते हुए ये फूल सचमुच बेहद खूबसूरत हैं।

माधुरी : मगर मुझे बताओ मैं इस समय क्या करूँ?

मीरा : पम्मी से कहो, अपने पापा के कान में जाकर कह दे कि

उन्हें जल्दी से विदा कर दें।

माधुरी : जैसे वे इतने से ही विदा हो जाएँगे!

पम्मी उसका हाथ दबाकर आँख से संकेत करती है।

पम्मी : ममी! वे इधर ही आ रहे हैं।

दूर से ही दीवानचंद के बोलने की आवाज़ सुनायी देने लगती है। बायीं ओर का दरवाज़ा खुलता है और दीवानचंद तथा भोलानाथ निकलकर बरामदे में आ जाते हैं। भोलानाथ के चेहरे का भाव ऐसा है, जैसे व्यर्थ की मुसीबत ढो रहे हों, यद्यपि ओठों पर हल्की-सी मुस्कराहट भी है। दोनों बरामदे से लॉन में आ जाते हैं।

दीवानचंद : उससे आगे तीन कोस की यात्रा है। मगर सच पूछो तो चलते हुए पता ही नहीं चलता कि रास्ता तीन कोस है, कि एक कोस है, कि है ही नहीं। प्रेम से कीर्तन करते और माता की जय बुलाते हुए पहुँच गये—'जय माता की'।

माधुरी : आइए, जीजा जी।

मीरा : नमस्ते, जीजा जी।

दीवानचंद : अच्छा, मीरा बीबी भी यहाँ है? वाह-वाह!

पम्मी मुंह बनाये हुए अन्दर चली जाती है।

दीवानचंद : बैठो, माधुरी बीबी। बैठो, बैठो।...मैंने सोचा कि बहुत दिन हो गये पम्मी से मिले हुए, जाकर मिल आऊँ। पम्मी बेटी!...अरे अन्दर भाग गयी?...पम्मो!

माधुरी : आप बैठिए,जीजा जी। पम्मी अभी आ जाएगी।...अं...आप चाय-वाय पियेंगे?

भोलानाथ : आये हैं तो पियेंगे ही। कभी-कभार तो बेचारे आते हैं।

मीरा : जीजा जी का शरीर अब पहले से बहुत विरध हो गया है। इन्हें जाने-आने में काफ़ी कष्ट होता होगा।

भोलानाथ : ये चिंतपुरनी की पैदल यात्रा कर आये हैं और तुम कहती हो, इन्हें आने-जाने में कष्ट होता होगा। मैं तो समझता हूँ कि इनकी सेहत पहले से अच्छी हो गयी है।

दीवानचंद : सेहत-वेहत अब क्या अच्छी होगी, बाबू भोलानाथ? लेकिन मैं अब इसकी पर्वाह नहीं करता। न जाने कितनी घड़ी की माया है? रह गयी तो आठ-दस साल रह गयी, न रही तो इस घड़ी का भी भरोसा नहीं।

भोलानाथ : अभी आपकी आयु बहुत लम्बी है। बीस-पच्चीस साल तो कम से कम समझिए। मुझे तो आप अब स्यालकोट से ज्यादा तंदुरुस्त दिखाई देते हैं।

माधुरी और परेशान हो जाती है।

माधुरी : आप स्यालकोट की बातें क्यों उठा रहे हैं?

भोलानाथ : ये आये हैं तो क्या स्यालकोट की बातें नहीं होंगी?

हँसता है।

माधुरी : छोड़िए भी मेरे दिल को दुःख होता है।...इनके दिल को भी दुःख होता है।

दीवानचंद : दुःख तो होता ही है, बीबी। मगर बैठ जायें, सब लोग खड़े ही क्यों हैं?

एक कुर्सी पर बैठ जाता है। और सब भी एक-एक करके बैठते हैं।

दीवानचंद : स्यालकोट की बातें स्यालकोट के साथ ही रह गयीं। कहाँ दीवानचंद की भरी-पूरी हवेली और कहाँ ये आज के दिन...!

मीरा : उन दिनों की बातों को छोड़िए, उन्हें सोचने में अब क्या रखा है?

दीवानचंद ठंडी साँस लेता है।

दीवानचंद : छोड़ दिया, मीरा बीबी। अब तो बस उन दिनों की बातें ही बातें हैं। अब न हाथ-पैर चलते हैं और न आँखों से ठीक सूझता है। कभी हाथ आग में जला लेता हूँ, कभी उँगली चाकू से काट लेता हूँ।

मीरा : आप सौ-सौ काम-धंधे भी तो करते रहते हैं। अब तो आपको सब काम-धंधे छोड़कर घर पर आराम करना चाहिए।

दीवानचंद : काम-धंधा न करूँ, बीबी, तो खाऊँगा कहाँ से? पेट को भी तो पालना है। कभी शाह दीवानचंद सोने का था, आज मिट्टी का भी नहीं।

अँगोछे से माथे और गले का पसीना पोंछता है।

मीरा : सवा पाँच हो चुके हैं।

माधुरी : आइ एम फीलिंग अपसेट।

मीरा : डोन्ट बी नर्वस।

दीवानचंद : मेरे दिल को यही देखकर ठंड पड़ती है कि तुम लोग, मेरे बच्चे, अब अच्छी तरह से हो। यहाँ आकर भोलानाथ ने नये सिरे से सब कुछ बनाया-किया है। तुम लोगों ने सिर ढकने के लिए यह छत खड़ी कर ली, मेरे लिए यही सोना है।

माधुरी : जीजा जी, जो कुछ हो रहा है, आपके आशीर्वाद से ही हो रहा है। इन्होंने किसी तरह अपनी जान मारकर यह छोटा-सा घर बना लिया है।

दीवानचंद : यही बड़ी बात है। देखकर मेरा कलेजा ठंडा होता है।... मीरा बीबी, लोग तो उधर से आकर यहाँ दर-बदर हो गये, भीख तक माँगने लगे। मैं हाथ की मेहनत करके पेट

पाल लेता हूँ, यही क्या कम है ? इसी में समझ लो अपनी इज़्ज़त बनी हुई है।

मीरा : आप अपने साथ वहाँ से कुछ नहीं लाये थे ?

दीवानचंद : जो कुछ ला सकता था, ले आया था—बस ये चार-पाँच जानें...।

माधुरी : मीरा, तुम भी जानबूझ कर पुराने किस्से छेड़ रही हो।

मीरा : मैं तो वैसे ही पूछ रही थी। सॉरी।

दीवानचंद : थोड़ा-सा रुपया-पैसा जिस गाँठ में लाया था, वह गाँठ-की गाँठ मैंने लाहौर के अड्डे पर हवाई जहाज़ वालों को दे दी। मैंने कहा कि मेरी ये चार-पाँच जानें हैं, इन्हें किसी तरह दिल्ली पहुँचा दो। पम्मी तब मेरी शुक्ला जितनी ही बड़ी थी। निक्कू शायद आठ-दस साल का होगा। ये लोग यहाँ पहुँच गये, तो मैंने समझा कि मेरा सब-कुछ पहुँच गया।

मीरा : इट्स गैटिंग लेट।

माधुरी : व्हट कैन आई डू एबाउट इट ?

भोलानाथ कंधे हिलाकर उठ खड़ा होता है।

भोलानाथ : मैं उधर जाकर देखता हूँ। शायद वे लोग आ रहे हों।

माधुरी : आ जायें तो उन्हें ड्राइंग रूम में ही बिठाइएगा।

भोलानाथ चला जाता है।

दीवानचंद : दीवानचंद पहले सूम था। सब लोग कहते थे, दीवानचंद सूम है। मगर उन दिनों की मारकाट ने इसे भी नसीहत दे दी। मगर नसीहत आयी कब ? जब घर-परिवार उजड़ गया, उसके बाद। मैंने कहा दीवानचंद, पहले तूने बुराई बोई थी, सो तुझे बुराई मिली। अब कुछ नेकी बो। जैसे तेरे लिए शुक्ला थी बिल्कुल वैसे ही निक्कू और पम्मी हैं। पम्मी और शुक्ला तो बिल्कुल एक-सी लगती थीं। क्यों माधुरी बीबी ?

माधुरी : हाँ-आँ...एक-सी ही लगती थीं।

दीवानचंद : आज भी इसे देख लेता हूँ तो मन खिल उठता है।...अपनी शुक्ला ही सामने आ जाती है।

ठंडी साँस लेता है। माधुरी चेष्टा करके जम्हाई रोकती है।

माधुरी : हम तो अक्सर उसकी बात किया करते हैं। कितनी प्यारी बच्ची थी!

मीरा : न जाने कौन मरदूद उठा कर ले गये। अब जाने बेचारी कहाँ है, कैसी है! जीजी, सी द टाइम!

माधुरी : फाइव एटीन।...महिपत!

महिपत अन्दर से आवाज़ देता है।

महिपत : आया जी!

दायें दरवाजे से बाहर आता है।

माधुरी : चाय का पानी खूब गर्म है न?

महिपत : जी!

माधुरी : और सब सामान ठीक है?

महिपत : जी!

माधुरी : टीकोज़ी नयी वाली निकालना, जो ये कश्मीर से लाए थे।

महिपत : अच्छा जी!

जाने लगता है।

मीरा : और सुन!

महिपत रुककर उसकी ओर देखता है।

महिपत : जी!

मीरा : जल्दी से चाय की एक प्याली बना ला। एकदम जल्दी।

महिपत : एक प्याली?

मीरा : हाँ-हाँ, एक प्याली। चीनी ज़्यादा हो।

महिपत : जी!

कंधे हिलाकर चला जाता है। माधुरी

कुर्सी से उठ खड़ी होती है।

माधुरी : तुम जीजा जी को चाय पिलाओ, मीरा। मैं उतनी देर में अन्दर जाकर देख लूँ कि...।

दीवानचंद : क्या बात है, माधुरी बीबी ? कुछ उतावली में दिखाई देती हो ?

माधुरी : जी हाँ...हाँ...कुछ उतावली ही है। इनके एक दोस्त हैं, आज हमने उन्हें चाय पर बुलाया है। इसीलिए हम ज़रा... ।

दीवानचंद : ठीक है। तुम लोग उनकी चाय का इन्तज़ाम करो। मेरे लिए चाय की प्याली रहने दो। हुआ तो बाद में पी लूंगा। दीवानचंद का अपना घर है। तुम लोग चाय पी-पिलाकर ख़ाली हो जाओ, तो...।

माधुरी मुश्किल से अपनी झुंझलाहट दबाती है।

माधुरी : नहीं जीजा जी, आप क्या उतनी देर बैठे रहेंगे ? हमें... अ...उन लोगों को जाने यहाँ कितनी देर लग जाय। आप चाय की प्याली पी लीजिए...।

भोलानाथ अन्दर से आता है। माधुरी एकदम घबरा जाती है।

माधुरी : वे लोग आ गये क्या ?

भोलानाथ : अभी नहीं आये।...इन्हें अभी चाय नहीं पिलायी ?

माधुरी : इनकी चाय आ रही है।

दीवानचंद : मैं आज तुम लोगों के पास एक ख़ास बात के लिए आया था। तुम लोग जल्दी में हो, इसलिए कहता था कि तुम लोग ख़ाली हो जाओ तो ही...।

भोलानाथ के माथे पर बल पड़ जाते हैं।

भोलानाथ : आपको जो कहना है अभी कह दीजिए। बाद में आज वक़्त नहीं मिलेगा।

दीवानचंद हक्का-बक्का-सा उसकी ओर, फिर मीरा और माधुरी की ओर देखता है। फिर किसी तरह बात कहने के लिए तैयार होता है।

दीवानचंद : बात यह है, बाबू भोलानाथ, कि देवी ने इस बार मुझ पर बहुत कृपा की है।

भोलानाथ : यह तो सचमुच खुशी की बात है।...मगर आप हमारे लिए कुछ कह रहे थे।

दीवानचंद : देवी ने मेरी खोयी हुई शुक्ला मुझे मिला दी है।

भोलानाथ : शुक्ला ?...यह कैसे हो सकता है ? शुक्ला तो पाकिस्तान में रह गयी थी।

माधुरी : चिंतपुरनी में वह कैसे पहुँच गयी ?

मीरा : और दस साल बाद आपने उसे पहचान लिया ? तब तो वह सिर्फ़ चार साल की थी...।

दीवानचंद : मेरा मतलब उससे नहीं, एक और लड़की से है। मेरी शुक्ला पम्मी जैसी लगती थी न ? यह भी बिल्कुल पम्मी जैसी ही लगती है।

माधुरी : तो आप ग़ैर लड़की की बात कर रहे हैं ?

दीवानचंद : नहीं माधुरी बीबी, मुझे वह ग़ैर नहीं लगती। सूरत-शक्ल से, चाल-ढाल से मुझे वह बिल्कुल अपनी शुक्ला और पम्मी जैसी ही नज़र आती है।

मीरा : बेचारी पम्मी को रहने दीजिए। उसका नाम क्यों ख़ाम-ख़ाह साथ लेते हैं ?

दीवानचंद : पम्मी भी तो मेरी अपनी बच्ची है, मीरा बीबी।...मैं तो तुम्हें भी अपनी बच्ची की तरह मानता हूँ, चाहे तुम कितनी ही बड़ी हो गयी हो।

हल्की बुज़ुर्गाना हँसी हँसता है।

दीवानचंद : वहाँ देवी के मन्दिर के बाहर मैंने इस लड़की को देखा।

यह वहाँ यात्रियों से पैसा-पैसा माँग रही थी।

भोलानाथ : तो किसी भीख माँगने वाली लड़की की बात है। इस तरह की सैंकड़ों भिखारिनें वहाँ जाती हैं।

दीवानचंद : मैंने और सैंकड़ों को नहीं, बस इसी एक को देखा। इसके कपड़े फटकर तार-तार हो रहे थे। शरीर कपड़ों में छिप नहीं रहा था। और मैंने देखा कि वहाँ ऐसे नेकबख़्त भी हैं, जो इसकी तरफ़ भूखी आँखों से देखते हैं...।

भोलानाथ झुँझला उठता है।

भोलानाथ : खैर, उस लड़की की बात छोड़िए। यह बताइए कि आप मुझसे क्या कहना चाहते हैं।

दीवानचंद : मैं वही बात कह रहा हूँ, बाबू भोलानाथ। मैं उस लड़की को वहाँ से अपने साथ ले आया हूँ...।

माधुरी झटका खायी-सी कुर्सी पर बैठ जाती है। भोलानाथ घूमकर मीरा की कुर्सी के पास आ जाता है।

भोलानाथ : तो आप उस भिखारिन लड़की को साथ घर ले आये हैं। ...खूब!

माधुरी : जीजा जी, आपको हम लोगों की इज़्ज़त का तो कुछ ख़्याल करना चाहिए। इस तरह एक भिखारिन को घर लाकर...!

जैसे आवेश में उसे आगे शब्द नहीं मिलते। भोलानाथ मीरा की कुर्सी की बाँह पर बैठ जाता है।

भोलानाथ : अच्छा ही है। इन्हें किसी के साथ की ज़रूरत भी थी। अब इनका दिल लगा रहेगा। आदमी के लिए अकेले ज़िन्दगी काटना बहुत मुश्किल होता है।

मीरा अर्थपूर्ण दृष्टि से माधुरी की ओर देखती है।

मीरा : पाँच बाईस हो गए।

माधुरी फिर कुर्सी से उठ जाती है।

माधुरी : पाँच बाईस हो गये। और महिपत अभी चाय की प्याली लेकर नहीं आया।...महिपत !

महिपत : (**अन्दर से**) जी, आया।

दीवानचंद : नौकर को मना ही कर दो, माधुरी बीबी। तुम्हारे मेहमान आने वाले हैं।

माधुरी : जी नहीं, अभी ले आता है। मगर आप...।

भोलानाथ : हाँ, तो आप कह रहे थे कि आप उस लड़की को घर ले आये हैं।

दीवानचंद : हाँ, मैं उसे साथ घर ले आया हूँ। वह हमारे जैसे अच्छे ख़ानदान की ही लड़की है। मगर उसके माँ-बाप पाकिस्तान में मारे गये थे। मैंने अपने से कहा कि दीवानचंद, जिस लड़की के लिए तू इतना व्याकुल था, समझ ले आज वह तुझे मिल गयी है। मैंने तभी मन में तय कर लिया कि इसे पास रखकर अपने दिल की सब हसरतें पूरी करूँगा। इसे पढ़ाऊँगा, इसका ब्याह करूँगा। इससे मुझे अपनी ज़िंदगी भी इस तरह बेकार नहीं लगेगी।

भोलानाथ : तो आप उस भिखारिन का ब्याह भी रचाएँगे...खूब !

दीवानचंद : अब उसे भिखारिन क्यों कहते हो, बाबू भोलानाथ ? अब तो वह मेरी लड़की है।

माधुरी : जो जगह-जगह जाकर पैसा-पैसा माँगती रही है, उसे आप अपनी लड़की कैसे कहते हैं ? जाने कहाँ-कहाँ किस-किस के पास वह रही है और क्या-क्या उसके साथ हुआ है ? ऐसी लड़की को बेटी बनाकर आप उसका ब्याह करेंगे ?

दीवानचंद : मैं सब जानता हूँ, माधुरी बीबी। पर मेरी शुक्ला के साथ भी तो क्या-क्या बीती होगी ? वह आज मुझे मिल जाती

तो उसे मैं ठुकरा देता ? और इस लड़की को मैं न मिलता, इसका बाप मिल जाता...वह इसे छोड़ देता ?

मीरा : लेकिन आप उसे पढ़ाएँगे, उसका ब्याह करेंगे, तो उसके लिए पैसे-पैसे की ज़रूरत नहीं पड़ेगी ? आप तो कह रहे थे कि आपके पास कुछ भी नहीं है।

दीवानचंद : आज मैं इसीलिए बाबू भोलानाथ के पास आया हूँ।

भोलानाथ : मेरे पास ?

दीवानचंद : बाबू भोलानाथ, पम्मी को आज तक मैंने अपनी शुक्ला की तरह समझा है। मुझे विश्वास है कि तुम आज मेरी इस लड़की को पम्मी की जगह मानोगे और मेरी थोड़ी मदद कर दोगे।

भोलानाथ गुस्से में खड़ा हो जाता है।

भोलानाथ : आप उस भिखारिन को मेरी लड़की से मिला रहे हैं ?

दीवानचंद : अब उसे भिखारिन क्यों कहते हो, बाबू भोलानाथ ? मैं उसे अपनी लड़की मानकर घर लाया हूँ। अब वह मेरी लड़की है। मैं तुम्हें बता नहीं सकता कि शुक्ला को लेकर आज भी मेरे दिल में कितनी-कितनी साधें उठती हैं...।

माधुरी : शुक्ला होती तो आपकी सब साधें पूरी होतीं। किसी और की लड़की लेकर थोड़े ही वे पूरी होंगी ?

दीवानचंद : माधुरी बीबी, मैं इस लड़की को अब अपनी शुक्ला ही समझता हूँ, तुम मेरी यह बात क्यों नहीं समझ पाती हो ?

महिपत प्याली लिए हुए चाय को चम्मच से हिलाता हुआ आता है।

मीरा : चाय आ गयी !

चाय की प्याली महिपत से लेकर दीवानचंद की ओर बढ़ा देती है।

मीरा : जीजा जी, चाय ले लीजिए। साथ कुछ खाने को भी लीजिएगा ?

दीवानचंद : नहीं, खाने को कुछ नहीं। दाँत ऐसे हो गये हैं कि कुछ खाया ही नहीं जाता। ऐसे चाय भी नहीं पीता। कभी तुम्हारे घर आऊँ या यहाँ आऊँ---तभी एकाध प्याली पी लेता हूँ।

चाय का घूंट भरता है, परन्तु ओंठ जल जाने से प्याली छलक जाती है। ओंठों पर ज़बान फेरता है और चाय को फूंक मारकर ठन्डी करने लगता है। माधुरी व्यस्तता और चिन्ता से घड़ी की ओर देखती है।

माधुरी : वे लोग अब चार-छः मिनट में आ ही जाएँगे।

परेशानी से ओंठ काटकर मीरा की ओर देखती है।

मिसेज़ मेहता इज़ वेरी पंक्चुअल।

मीरा : जीजा जी, आप जल्दी से चाय पी लीजिए और...मेरा मतलब है कि जो मेहमान आ रहे हैं, वे ज़रा और तरह के हैं। आपको भी उन लोगों में बैठकर बुरा लगेगा। इसलिए...।

दीवानचंद : हाँ-हाँ, बस जा ही रहा हूँ। मुझे पता है, ऐसे कपड़ों से मेहमानों में बुरा लगता है।

चाय सॉसर में डालकर पीने लगता है।

माधुरी : **(मीरा से)** इट्स हॉरीबल।

मीरा : जीजा जी, इस तरह चाय पी जाती है, सॉसर में डालकर...?

दीवानचंद फूंक मारकर जल्दी-जल्दी घूंट भरता है।

दीवानचंद : इस तरह जल्दी पी जाती है, मीरा बीबी। नहीं तो ठंडी होने में देर लगती है।

माधुरी : (**मीरा से**) सपोज़ दे कम जस्ट नाउ।

मीरा कुर्सी की पीठ से टेक लगा लेती है।

मीरा : ओन्ली गॉड कैन हेल्प!

भोलानाथ : अच्छा तो मुझे इजाज़त दीजिए।

भोलानाथ घड़ी देखता है, फिर फीता कलाई में घुमाने लगता है।

मेहमान अब आने ही वाले हैं। इस समय मुझे उधर बैठना चाहिए।

दीवानचंद आधी पी हुई प्याली तिपाई पर रखकर अँगोंछे से ओंठ पोंछता हुआ खड़ा हो जाता है।

दीवानचंद : मुझे बस ज़रा-सी बात ही कहनी है।

भोलानाथ बेसब्री से कुर्सी की पीठ को पकड़ लेता है।

भोलानाथ : तो जो भी कहना है, जल्दी से कह डालिए। इधर-उधर की बातें फिर हो जाएँगी।

दीवानचंद : मैं ज्यादा नहीं कहता। तुम आज मुझे हज़ार-पाँच सौ रुपया भी कर्ज़ दे दो तो मैं एक छोटी-मोटी दुकान खोल लूंगा और...।

माधुरी : जीजा जी, आप इस उम्र में दुकान खोलेंगे?

मीरा : जबकि आपसे ठीक से चला भी नहीं जाता?

भोलानाथ : लेकिन उसके लिए हज़ार-आठ सौ रुपया मैं कहाँ से दे सकता हूँ?...आजकल के ज़माने में हर आदमी अपना गुज़ारा मुश्किल से करता है।

दीवानचंद : तुम जानते हो, बाबू भोलानाथ, कि और मेरा कोई नहीं है। तुम्हीं एक हो, जिससे मैं माँग सकता हूँ। और दो-चार साल में तुम्हारा रुपया लौटा भी दूंगा।

भोलानाथ : माफ़ कीजिए, मेरे पास रुपया होता तो मैं दे देता। नहीं

हो तो कहाँ से दूँ ? मेरे मेहमान आ रहे हैं, इसलिए अब मुझे इजाज़त दीजिए। फिर कभी मुलाक़ात होगी।

झटके से अन्दर की तरफ़ चला जाता है। दीवानचंद ठुकराया-सा, याचना की दृष्टि से माधुरी की ओर देखता है।

दीवानचंद : माधुरी बीबी, तुम दीवानचंद को अच्छी तरह जानती हो। मैं तुम्हारा रुपया रखूँगा नहीं। तुम मुझे हज़ार-आठ सौ नहीं, तो चार-पाँच सौ रुपया ही दिला दो। मैं उतने पैसों से ही कुछ न कुछ काम कर लूँगा।

माधुरी : जीजा जी, दे सकते तो वे आपको इस तरह मना न करते। नहीं दे सकते, तभी तो उनको करना पड़ता है। आप भी सोचें कि इन्कार करते उन्हें कितना बुरा लगा होगा।

मीरा : इट इज़ आलमोस्ट टाइम !

दीवानचंद : माधुरी बीबी, तुम मेरे लिए कुछ न करोगी तो मेरे हाथ बिल्कुल टूट जाएँगे...मैं इस लड़की को कितनी चाह से लाया हूँ...।

माधुरी : जीजा जी, क्योंकि लोग आने वाले हैं, इसलिए...अच्छा ये बातें अब फिर होंगी।

दीवानचंद : मैं जा रहा हूँ, बीबी।

जेब से एक मैला-सा रुपये का नोट और एक मिठाई का दोना निकालता है।

माधुरी : यह क्या है ?

दीवानचंद : यह रुपया पम्मो के लिए और यह चिंतपुरनी का प्रसाद...।

माधुरी : जीजा जी, आप हर बार यह सब क्यों ले आते हैं ? मैंने कितनी बार आपसे कहा है कि आप यह सब मत लाया करें ?

दीवानचंद आँखों को बाँह से पोंछता है।

दीवानचंद : दिल नहीं मानता, बीबी। बेटी से मिलने आता हूँ तो खाली हाथ आना अच्छा नहीं लगता। अब मेरा दिल बुरा न करो, रख लो।

मीरा : कीप इट, जीजी। डोंट वेस्ट टाइम ओवर इट।

माधुरी वितृष्णा से दोनों चीजें पकड़ लेती है।

दीवानचंद : ज़रा पम्मी को बुला दो। जाते हुए उसके सिर पर हाथ फेर दूँ।

माधुरी : पम्मी उधर कहीं होगी ! शायद नौकर से चीज़ें लगवा रही हो।

मीरा : मैं आपकी तरफ़ से उसके सिर पर हाथ फेर दूंगी।

दीवानचंद : अच्छा-अच्छा ! सिर पर हाथ फेरना और बहुत-सा प्यार देना।

बरामदे में जाकर बायीं ओर के दरवाज़े की तरफ़ जाने लगता है।

माधुरी : इधर से चले जाइए जीजा जी, दूसरे दरवाज़े से...।

दीवानचंद : अच्छा-अच्छा ! जिधर से कहो, उधर से चला जाता हूँ।

दायीं ओर के दरवाज़े की तरफ़ चल देता है। दरवाज़े के पास से मुड़कर उनकी ओर देखता है।

दीवानचंद : बीबी, मेरी किसी बात का बुरा नहीं मानना।

चला जाता है। माधुरी कटी-सी कुर्सी पर पड़ जाती है।

माधुरी : थैंक गॉड ! उनके आने से पहले ही ये चले गए।

पैर तिपाई पर रखती है। तिपाई पर रखी हुई प्याली गिरकर टूट जाती है। मीरा के गले से हल्का-सा हँसी का स्वर निकलता है।

मीरा : और प्याली टूट गयी ?

माधुरी : अब टूटने दो। ग्रह तो टल गया। मुझे बहुत डर लग रहा था। अगर मिस्टर और मिसेज़ मेहता इनके यहाँ होते ही आ जाते...!

मीरा : अभी पूरे साढ़े पाँच हुए हैं।

माधुरी : आज ये ऐसे वक़्त आ टपके कि बस...।

मीरा : आये तो कुछ दे ही गये हैं। एक रुपया और देवी का प्रसाद...।

माधुरी जैसे याद आ जाने से अपने हाथ में पकड़े हुए रुपये और दोने को देखती है।

माधुरी : मैं इनकी लायी हुई कोई चीज़ अपने पास नहीं रखती। हमेशा नौकर को दे दिया करती हूँ।

पम्मी अन्दर से भागती हुई आती है।

पम्मी : ममी, मिस्टर और मिसेज़ मेहता आ गए।

माधुरी उठकर खड़ी हो जाती है।

माधुरी : आ गए ?...महिपत !

महिपत दायीं ओर के दरवाज़े से आता है।

महिपत : जी !

माधुरी : इधर आ। यह ले रुपया...और यह बर्फ़ी।...खा लेना। और ये प्याली के टुकड़े जल्दी से साफ़ कर।

महिपत : और प्याली टूट गयी ?

माधुरी : हाँ-हाँ, जल्दी कर। कोई टुकड़ा रह न जाए। और जल्दी से अन्दर से दोनों फूलदान उठा ला।

महिपत टुकड़े बीनने लगता है।

पम्मी : ममी, मिसेज़ मेहता ने मौसा जी को यहाँ से जाते देख लिया है।

माधुरी : देख लिया है ?

हताश भाव से कुर्सी पर बैठ जाती है।

पम्मी : वे पूछ रही थीं कि वह कौन आदमी था, जो रोता हुआ तुम्हारी कोठी से बाहर जा रहा था।

माधुरी : मैं तुमसे न कहती थी, मीरा, कि कुछ-न-कुछ ज़रूर होगा।

तिपाई पर कुहनियाँ रखकर दोनों हाथों से सिर पकड़ लेती है।

यह औरत अब जगह-जगह इस बात की चर्चा करेगी। कई-कई तरह के मतलब निकालेगी...।

मीरा : कोई मतलब नहीं निकालेगी। तुम अब इस बात को दिल से निकाल दो...। महिपत, साहब से कहो, मिस्टर और मिसेज़ मेहता को इधर ले आयें।

महिपत टुकड़े बीनकर सीधा होता है।

माधुरी : सब टुकड़े बीन लिये ?

महिपत : जी।

माधुरी : कोई टुकड़ा रह तो नहीं गया ?

महिपत : जी नहीं।...उन लोगों को भेज दूं ?

माधुरी : ठहर जाओ, अभी नहीं।

उसी तरह सिर पकड़े बैठी रहती है। मीरा उठकर उसके कंधे पर हाथ रखती है।

मीरा : क्या बात है जीजी, तबीयत तो ठीक है ? फिर से तुम नर्वस हो रही हो ?

माधुरी : मीरा, तुम और पम्मी उन लोगों के पास जाकर बैठो। मैं अभी ठीक होकर सब को बुला लेती हूँ।

मीरा : बात क्या है, जीजी ? इस तरह निढाल होकर बैठोगी तो पार्टी की सारी तैयारी बेकार हो जाएगी।

माधुरी : मैं तुमसे कह रहीं हूँ, मीरा, कि मैं अभी ठीक हुई जाती

हूँ। तुम तब तक पम्मी को लेकर उन लोगों के पास चली जाओ।

मीरा : तो तुम दो मिनिट में ठीक हो जाओ। मैं उतनी देर उनसे बात करती हूँ। महिपत, तुम जाकर चीज़ें ठीक करो। पम्मो !

महिपत दायें दरवाज़े से तथा मीरा और पम्मी बायें दरवाज़े से चली जाती हैं। माधुरी उसी तरह बैठी रहती है।

माधुरी : कितनी मनहूस छाया है इनकी ? यह छाया मेरे दिमाग़ से निकलती क्यों नहीं ? क्यों ये सब कुछ लेकर आते हैं ? क्यों इतना प्यार दिखाते हैं ? क्यों ऐसी बातें करते हैं ? मेरे शरीर में एक घिनौनी सिहरन भर जाती है और... मुझे...मुझे अपना आप भी मनहूस लगने लगता है—बेहदम नहूस।

हाथों में मुँह छिपा लेती है।

बहुत बड़ा सवाल

पात्र

राम भरोसे
श्याम भरोसे
शर्मा
कपूर
मनोरमा
संतोष
गुरप्रीत
प्रेम प्रकाश
दीन दयाल
रमेश
मोहन
सत्यपाल

स्थान : एक स्कूल का कमरा जिसे ब्लैक बोर्ड कोने में हटा कर मीटिंग के लिए तैयार कर लिया गया है। मास्टर की कुर्सी-मेज अध्यक्ष के लिए है और बच्चों के डेस्क शेष सदस्यों के लिए। पीछे दीवार पर संसार का बहुत बड़ा मानचित्र लटक रहा है। आने-जाने के लिए दोनों तरफ़ दरवाज़े हैं।

परदा उठने पर राम भरोसे और श्याम भरोसे डेस्कों से धूल झाड़ रहे हैं।

श्याम भरोसे : (हाथ रोक कर) राम भरोसे !

राम भरोसे बिना सुने धूल झाड़ता रहता है।

श्याम भरोसे : ए राम भरोसे !

राम भरोसे : (बिना हाथ रोके) क्या है ?

श्याम भरोसे : इतनी धूल क्यों उड़ाता है ? आहिस्ता से नहीं झाड़ा जाता ? रोज़-रोज़ की धूल से फेफड़े पहले ही खाये हुए हैं।

राम भरोसे : तो रोता क्यों है ? जान पाँच बरस में नहीं जायेगी, चार बरस में चली जायेगी।

श्याम भरोसे : तू अपनी जान चाहे पाँच बरस में दे, चाहे एक बरस में। पर मेरी जान अभी रहने दे।

राम भरोसे : ससुरी रोज़-रोज़ ये मीटिंग होंगी, तो किसकी जान रहेगी ? आज एक का जन्म-दिवस होकर निकलता है, तो कल दूसरे का मरन-दिवस आ जाता है। जनमें-मरें

ये, धूल खायें राम भरोसे, श्याम भरोसे। **(ज़ोर-ज़ोर से झाड़ता हुआ)** सवेरे निकालो, तो शाम को चली आती है। श्याम को निकालो, तो सबेरा नहीं होने देती।

श्याम भरोसे : आज भी किसी का जन्म-दिवस है क्या?

राम भरोसे : पता नहीं कौन दिवस है। अपना मरन-दिवस है।

ढीले-ढाले ढंग से फ़ाइल हाथ में लिए शर्मा बाहर से आता है।

शर्मा : **(अपने आप से बड़बड़ाता)** अभी तक कोई भी नहीं है यहाँ।

राम भरोसे : **(हाथ रोक कर)** कोई भी नहीं है, माने?

शर्मा : माने जो आने वाले थे, उनमें से कोई भी। लोग समझते हैं, मेरे बाप के घर का काम है। जैसे मुझे तनख़्वाह मिलती है इसकी। कोई एक आदमी वक़्त से नहीं आता।

श्याम भरोसे : साहब, आज किसी की साल-गिरह है यहाँ पर?

शर्मा : मेरे झख मारने की साल-गिरह है। तुम लोगों से अभी तक डेस्क साफ़ नहीं हुए?

राम भरोसे : देख रहे हो, कर ही रहे हैं।

शर्मा : साढ़े पाँच मीटिंग शुरू होनी थी और पौने छह बज चुके हैं। लोग देर से आयें, तुम लोगों को तो जगह वक़्त से तैयार कर देनी चाहिए।

राम भरोसे : एक घड़ी दिला दो साहब! तब हम वक़्त से सब काम कर सकते हैं। हमें क्या मालूम कब पाँच बजता है, कब साढ़े पाँच।

शर्मा : स्कूल में वक़्त से घन्टी नहीं बजाते?

श्याम भरोसे : सुपरीडेंट की डाँट सुनकर बजाते हैं। घड़ी तो स्कूल की कब से खराब पड़ी है।

राम भरोसे : आप लोगों के हाथ पर लगी रहती है, फिर भी देर कर

जाते हो। हमारी तो कोई बात ही नहीं है।

श्याम भरोसे : और जल्दी कर दें, तो डाँट पड़ती है कि जल्दी क्यों किया, फिर से धूल भर गयी। जल्दी न करें, तो डाँट पड़ती है कि जल्दी क्यों नहीं किया, टाइम बरबाद हो रहा है।

राम भरोसे : कोई जादू तो जानते नहीं। हाथ से काम करते हैं, सो कर रहे हैं।

शर्मा : बक-बक मत करो, काम करो। अभी कितना काम बाकी है ?

राम भरोसे : क्लास सारी झाड़ दी है। मास्टर की कुर्सी बाकी है।

जाकर उस कुर्सी-मेज को साफ़ करने लगता है।

लो हो गयी यह भी। और बता दो जो झाड़ना हो।

श्याम भरोसे : ब्लैक बोर्ड तो नहीं चाहिए ?

शर्मा : नहीं। पर दोनों आदमी कहीं जाना नहीं। यहीं दरवाज़े के पास बैठना। पता नहीं किस काम के लिए ज़रूरत पड़ जाय।

आगे की डेस्क पर बैठने लगता है, पर सहसा उठ जाता है।

यह सफ़ाई की है ? देखो कितनी धूल जमी है यहाँ। सफ़ाई इस तरह से की जाती है ?

राम भरोसे : क्या पता साहब किस तरह से की जाती है। किसी स्कूल से इस काम की पढ़ाई तो पढ़े नहीं हैं।

श्याम भरोसे : सुपरीडेंट कहता है सीधा झाड़न मारो, सो सीधा मार देते हैं। आप कोई और तरीका बताओ, तो वैसे कर देते हैं।

शर्मा : नानसेंस ! अब जैसा हुआ है, रहने दो।

श्याम भरोसे : रहने दो, तो रहने देते हैं।

शर्मा रूमाल से सीट साफ़ करके डेस्क पर बैठ जाता है।

शर्मा : जाओ, बाहर बैठो अब।

श्याम भरोसे : क्यों साहब, मीटिंग बरख़ास्त कब होगी ?

शर्मा : क्या पता कब होगी। तुम्हें क्या करना है ?

श्याम भरोसे : कमरे को ताला नहीं लगाना है ? ताला लगेगा, तभी तो यहाँ से जा पायेंगे। नहीं तो सुपरीडेंट कल हमारी जान को आयेगा।

वह और राम भरोसे दोनों दायीं तरफ़ के दरवाज़े के बाहर जा बैठते हैं। राम-भरोसे हाथ पर सुरती मलने लगता है। श्याम भरोसे ऊँघने की मुद्रा में टेक लगा लेता है। मनोरमा, संतोष और गुरप्रीत उसी दरवाज़े से आती हैं। राम भरोसे आँखें उठाकर चिढ़े हुए भाव से उन्हें आते देखता है।

मनोरमा : क्या बात है, शर्मा ? पहरा क्यों बिठा रखा है बाहर ? मीटिंग में मार-धाड़ तो नहीं होने वाली है ?

शर्मा : **(उठता हुआ)** साढ़े पाँच हो गये आप लोगों के ?

मनोरमा : अभी कोई भी तो नहीं आया, सिवाय हमारे।

शर्मा : साढ़े छह तक आराम से आयेंगे लोग। वक़्त की पाबन्दी तो सिर्फ़ एक आदमी पर है। क्योंकि वह कमबख़्त सेक्रेटरी है।

संतोष : मैंने इसीलिए अपना नाम वापस ले लिया था। मुफ़्त की सिर-दर्दी।

मनोरमा : तू ने इसीलिए नाम वापस ले लिया था कि शर्मा के

खिलाफ़ तुझे तीन वोट भी न मिलते। अवर शर्मा इज ग्रेट।

संतोष : लाँग लिव शर्मा।

मनोरमा : (**गुरप्रीत से**) तू इतनी गुपचुप क्यों है ?

संतोष : शर्मा के सामने यह हमेशा गुपचुप हो जाती है।

गुरुप्रीत : प्लीज़।

कपूर मुस्कराता हुआ बायीं तरफ़ के दरवाज़े से आता है।

कपूर : वाह, वाह !

मनोरमा : वाह, वाह !

कपूर : आप किस चीज़ की दाद दे रही हैं ?

मनोरमा : आपकी वाह-वाह की।

कपूर : मैं तो इस बात पर वाह-वाह कर रहा था कि शर्मा तीन-तीन लेडीज़ से घिरा है। सेक्रेटरी होने के ये मज़े होते हैं।

शर्मा : आज से तुम सेक्रेटरी हो जाओ।

मनोरमा : और शर्मा को चेयरमैन बना दीजिए।

कपूर : चेयरमैन मत कहिए...वह कहिए...क्या होता है वह...अधि-अक्ष।

संतोष : अध्यक्ष।

कपूर : अधि-अक्ष।

संतोष : (**ज़ोर देकर**) अध्यक्ष।

कपूर : (**ज़ोर देकर**) अधि-अक्ष। वह तुम्हारा अधि-अक्ष अभी तक नहीं आया, शर्मा ?

शर्मा : तुम्हीं कौन वक़्त से आ गये हो ?

कपूर : दस-बीस मिनट लेट, लेट नहीं होता। और फिर मैं तो साधारण सदसिय हूँ।

मनोरमा : सीधे मेम्बर क्यों नही कह देते ? सदसिय !

कपूर : वह लफ़्ज़ क्या है वैसे ?

मनोरमा : सदस्य।

कपूर : सदसिय।

मनोरमा : **(ज़ोर देकर)** सदस्य।

कपूर : **(ज़ोर देकर)** सदसिय। मैं पहले ही कहता था इस आदमी को चेयरमैन नहीं बनाना चाहिए। आज छुट्टी का दिन है, वैसे भी ठंड है, घर में रज़ाई में दुबक कर सो रहा होगा। सॉरी...घर में नहीं होगा, वह होगा आज उसके यहाँ...

संतोष : किसके यहाँ ?

गुरप्रीत : प्लीज़ !

संतोष : नाम तो जान लेने दे।

गुरप्रीत : प्लीज़ ! प्लीज़ ! प्लीज़ !

कपूर : गुरप्रीत जी नाम जानती हैं।

संतोष : जानती है तू ?

गुरप्रीत : मैं इसीलिए आप लोगों की मीटिंग में नहीं आना चाहती। यहाँ काम तो कुछ होता नहीं, बस इसी तरह की बातें होती रहती हैं।

कपूर : गुरप्रीत जी की सहेली है वह।

संतोष : अच्छा...वह ?

कपूर : हाँ, वही।

संतोष : यह कब से ?

कपूर : कब से ? दो साल से तो मैं ही जानता हूँ।

संतोष : पर वह तो पहले...

कपूर : आप बहुत पुरानी बात कर रही हैं, लगता है आप शहर में नहीं रहतीं।

संतोष : **(गुरप्रीत से)** सच बात है यह ?

गुरप्रीत : **(शर्मा से)** मैं जान सकती हूँ, मीटिंग कब शुरू होगी ?

कपूर : कमज़-कम चेयरमैन तो आ जाय। क्यों शर्मा, तब तक एक-एक प्याली चाय न पी ली जाय ? ठंड आज वाक़ई बहुत है। क्यों मनोरमा जी ?

मनोरमा : आई डोंट माइन्ड।

कपूर : राम भरोसे !

राम भरोसे : **(सुरती फाँक कर)** फ़रमाइए।

कपूर : जा कर लाला से एक सेट चाय ले आ। पाँच प्यालियाँ।

शर्मा : मैं नहीं पिऊँगा।

गुरप्रीत : मैं भी नहीं लूंगी।

कपूर : आपको लेनी चाहिए। आपकी तबीयत सुस्त लग रही है।

गुरप्रीत : थैंक्स। मुझे इस वक़्त ज़रूरत नहीं है।

कपूर : राम भरोसे, आधा सेट और तीन प्यालियाँ।

मनोरमा : शर्मा से भी तो दूसरी बार पूछ लेते।

कपूर : क्यों भई शर्मा ?

शर्मा : यह मीटिंग का वक़्त है, चाय पीने का नहीं।

कपूर : राम भरोसे ! आधा सेट और तीन प्यालियाँ।

संतोष : साथ थोड़ी मूँगफली। शर्मा मूँगफली खायेगा !

कपूर : पचीस पैसे की मूँगफली।

शर्मा : मैं ठीक छह बजे मीटिंग शुरू कर दूंगा। तुम लोग चाय पीते रहना।

राम भरोसे सहज भाव से चल कर शर्मा के पास आ जाता है।

राम भरोसे : **(शर्मा से)** पैसे आप देंगे या...?

मनोरमा : कपूर साहब देंगे।

कपूर जेब से बटुवा निकालकर देखता है।

कपूर : मेरे पास दस का नोट है।

मनोरमा : कोई बात नहीं, टूट जायेगा।

कपूर राम भरोसे को नोट देता है।

कपूर : चेंज गिन कर लाना।

राम भरोसे : **(जाते-जाते)** जितनी गिनती आती है, उतना गिन कर ले आयेंगे।

गुरप्रीत : मुझे आज मीटिंग होती नहीं लगती।

संतोष : अभी तो कोरम ही पूरा नहीं है।

कपूर : क्यों न मीटिंग कैंसिल करके सब लोग कैंटीन में चलकर चाय पियें ?

शर्मा : मीटिंग कैंसिल नहीं होगी। आज की छुट्टी तो बरबाद हुई ही है, फिर एक और छुट्टी बरबाद करनी पड़ेगी।

मनोरमा : सेक्रेटरी के मुँह से ऐसी बात अच्छी नहीं लगती।

शर्मा : मैं तो इसी वक़्त त्यागपत्र देने को तैयार हूँ। आप लोग मंजूर कर दीजिए।

कपूर : वाह ! तिआगपतर कैसे दे सकते हो तुम ?

संतोष : त्यागपत्र।

कपूर : तिआगपतर।

संतोष : **(ज़ोर देकर)** त्यागपत्र।

कपूर : **(ज़ोर देकर)** तिआगपतर। तुम तिआगपतर दे दोगे, तो दूसरा सेक्रेटरी हमें कहाँ मिलेगा ?

मनोरमा : हियर-हियर ! सेक्रेटरी शर्मा ज़िन्दाबाद !

कपूर : सबकी तरफ़ से ज़िन्दाबाद !

शर्मा : श्याम भरोसे !

संतोष : सो रहा है वह।

शर्मा : **(ऊँचे स्वर में)** श्याम भरोसे !

श्याम भरोसे : सुन रहे हैं, साहब ! बोलिए तो।

शर्मा : तुमसे मैंने क्या कहा था ?

श्याम भरोसे : क्या कहा था ?

शर्मा : बैठने को कहा था।

श्याम भरोसे : तो हम बैठे ही हैं, खड़े तो नहीं हैं।

शर्मा : लेकिन बैठे-बैठे ऊँघ रहे हो।

श्याम भरोसे : मानुस हैं, साहब। रबड़ के पुतरे नहीं हैं। आ गयी होगी ऊँघ। कामब ताइए।

शर्मा : राम भरोसे चाय लाने गया है।

श्याम भरोसे : गया है। आप के सामने गया है।

शर्मा : मैं भी कह रहा हूँ, गया है। तुम उसके पीछे चले जाओ। बोलो, चाय एकदम जल्दी आनी चाहिए।

श्याम भरोसे : **(उठता हुआ)** बोल देते हैं पर आयेगा तो पैरों से चल कर ही। हमारे जाने से उसके पंख तो उग नहीं आयेंगे।

शर्मा : **(गुस्से से)** तो मत जाओ तुम। आने दो उसे, जब भी आता है।

श्याम भरोसे : **(बैठता हुआ)** नहीं जाते। वैसा हुकम हो, तो वैसा। ऐसा हुकम है, तो ऐसा।

कपूर : क्यों शर्मा, लो ग्रेड में ये लोग नहीं आते ?

शर्मा : आते हैं।

कपूर : तो इन्हें भी मेम्बर नहीं होना चाहिए ? लो ग्रेड वर्कर्ज़ वेल्फ़ेयर सोसाइटी जैसे हम लोगों की है, वैसे ही इन लोगों की भी है।

मनोरमा : है तो नहीं, पर होना चाहिए।

संतोष : तब राम भरोसे चेयरमैन हो जायेगा, श्याम भरोसे सेक्रेटरी।

कपूर : फिर चाय लाने कौन जायेगा ? शर्मा ?

शर्मा : तुम मेरा अपमान कर रहे हो।

कपूर : अगर अपमान हो गया हो तो मैं माफ़ी माँग लेता हूँ। मैंने तो एक बात कही थी।

रामभरोसे चाय और मूंगफली लिए हुए आता है।

मनोरमा : लीजिए, चाय आ गयी।

कपूर : गुरप्रीत जी, आप बनाइये चाय।

गुरप्रीत : मुझे सबके टेस्ट का पता नहीं है।

कपूर : आपको नहीं है पता ? बनाइए, बनाइए।

संतोष : **(गुरप्रीत से)** सबसे छोटी तू ही है।

कपूर : सबसे छोटी और सबसे...

मनोरमा : कह दीजिए, कह दीजिए।

कपूर : सॉरी मेरा वह मतलब नहीं था।

गुरप्रीत चाय बनाने लगती है। प्रेम प्रकाश, दीन दयाल बायीं तरफ़ से आते हैं।)

मनोरमा : क्या मौक़े पर आये हैं आप लोग !

प्रेम प्रकाश : चाय और मूँगफली ! किसने दावत की है ?

मनोरमा : कपूर साहब ने।

प्रेम प्रकाश : किस ख़ुशी में ?

मनोरमा : आप लोगों के देर से आने की।

दीन दयाल : मैं एक प्याली ले सकता हूँ ?

गुरप्रीत : **(पहली प्याली उसकी तरफ़ बढ़ाकर)** लीजिए।

दीन दयाल : **(प्याली लेकर)** थैंक्स।

गुरप्रीत : **(प्रेम प्रकाश से)** आप भी लेंगे ?

प्रेम प्रकाश : क्यों नहीं ?

गुरप्रीत : **(प्याली बढ़ाकर)** लीजिए। चीनी कम डाली है। अब तीसरी प्याली कौन लेगा ?

मनोरमा : कपूर साहब, जिन्होंने चाय मंगवायी है।

कपूर : नहीं, नहीं, आप लीजिए।

मनोरमा : आप तकल्लुफ़ कर रहे हैं। ले लीजिए।

कपूर : तकल्लुफ़ तो आप कर रही हैं।

मोहन दायीं तरफ़ से आता है।

मोहन : मीटिंग शुरू नहीं हुई अभी ? चाय चल रही है ? यह

एक्सट्रा प्याली किसके लिए रखी है? मैं ले सकता हूँ?

गुरप्रीत : क्यों नहीं?

मोहन प्याली उठाकर पीने लगता है।

मोहन : खूब गर्म चाय है। मेज़बान कौन है? दीन दयाल जी, आप?

दीन दयाल : मैं भी तुम्हारी तरह मेहमान हूँ।

मोहन : तो प्रेम प्रकाश जी की तरफ़ से है चाय? (**प्रेम प्रकाश से**) धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद।

प्रेम प्रकाश : मुझे धन्यवाद क्यों देते हो? मैं खुद मेहमान हूँ।

मोहन : हम तीनों मेहमान हैं? तो मेज़बान?

संतोष : पैसे कपूर साहब के खर्च हुए हैं।

मोहन : पैसे खर्च किये हैं, फिर भी खुद नहीं पी रहे? क्या बड़प्पन है!

संतोष : बड़प्पन तो अपने आप हो गया, जब...

मोहन : किसी-किसी में होता है ऐसा बड़प्पन। हमारी पहचान के एक साहब और हैं ऐसे। शादी-शुदा हैं। वे अपनी पत्नी को खुद सैर करने नहीं ले जाते। दोस्तों को ले जाने देते हैं।

गुरप्रीत : प्लीज़!

शर्मा : मुझे ऐसी बातचीत पर सख्त एतराज़ है। मैं चाहूँगा कि हम मीटिंग का वातावरण गम्भीर रहने दें।

मोहन : मैं इसके बाद गम्भीर रहने की प्रतिज्ञा करता हूँ। थोड़ी मूँगफली तो ले सकता हूँ न?

शर्मा : तो अब कार्यवाही आरम्भ की जाय...

बाहर से एक ठहाका सुनाई देता है।

मनोरमा : अभी और लोग आ रहे हैं।

मोहन : रमेश और सत्यपाल हैं। ऐसी वहशियाना हंसी और

कोई हँस ही नहीं सकता।

कपूर : देखो, तुमने अभी प्रतिज्ञा की है कि...

मोहन : सॉरी। मगर काई भी कह दे, यह हँसी इन्सानों की सी है ?

रमेश और सत्यपाल बायीं तरफ़ से आते हैं।

रमेश : किसकी हँसी इन्सानों की-सी नहीं है ?

मोहन : मेरा मतलब आप ही की हँसी से था। लेकिन मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ। आप मूँगफली खाइए।

सत्यपाल : यह ज़रा-सी मूँगफली आप किस-किस को खिलायेंगे ?

रमेश : ले भी लो अब। शर्मा साहब, आप भी लीजिए।

शर्मा : **(एक दाना लेकर)** तो मीटिंग की कार्यवाही अब...

रमेश : मनोरमा जी, आप परे क्यों खड़ी हैं ? लीजिए न। कुल आठ-दस दाने बचे हैं।

मनोरमा : ये कपूर साहब को दे दीजिए वह बेचारे...

रमेश : आप लीजिए, उन्हें भी देता हूँ। आप भी लीजिए संतोष जी। गुरप्रीत जी, आप छिप क्यों रही हैं ? लीजिए, कुल दो ही दाने बचे हैं। अरे, दो में से भी एक दाना छोड़ दिया ? लीजिए कपूर साहब।

कपूर : यह तुम ले लो।

रमेश : नहीं, आप ले लीजिए।

कपूर : नहीं, तुम्हीं ले लो।

रमेश : नहीं नहीं। आप ले लीजिए।

दीन दयाल : ऐसा भी क्या तकल्लुफ़ है ? आप दोनों मत लीजिए। मैं ले लेता हूँ। थैंक्स !

शर्मा मास्टर की कुर्सी के पास चला जाता है।

शर्मा : दोस्ती !

कपूर : पहले सब लोग बैठ जायें।

मोहन : लेडीज़ फ्रन्ट। जेन्टस् बैक।

रमेश : क्यों ? एक-एक डेस्क पर एक-एक पेयर क्यों नहीं ?

मोहन : लेडीज़ कम हैं, जेन्टस् ज़्यादा हैं।

रमेश : तो दो-दो डेस्क जोड़ लिये जायें जिससे...

मोहन : मुझे कोई एतराज़ नहीं।

शर्मा : मुझे एतराज़ है। डेस्क इतने हैं कि एक-एक डेस्क पर एक-एक आदमी बैठ सकता है। जहाँ-जहाँ बैठना हो बैठ जाइए।

मोहन : इस सुझाव से कौन-कौन सहमत है ?

मनोरमा : हम सब सहमत हैं।

मोहन : आप सब सहमत हैं, तब तो कुछ कहने को बचता ही नहीं।

एक डेस्क पर बैठ जाता है। और लोग भी बिखर कर बैठ जाते हैं।

शर्मा : मैं समझता हूँ, अब और किसी के आने की आशा नहीं करनी चाहिए। अध्यक्ष महोदय नहीं आये, इसलिए आज की मीटिंग की अध्यक्षता के लिए मैं कपूर साहब के नाम का प्रस्ताव करता हूँ।

सत्यपाल : मैं इसका समर्थन करता हूँ।

शर्मा : आइए, कपूर साहब।

कपूर मास्टर की कुर्सी पर जा बैठता है। सब लोग ताली बजाते हैं।

कपूर : (**गला साफ़ करके**) भाइयो और बहनो...

मोहन : मेरा एक संशोधन है। बहनो पहले और भाइयो बाद में होना चाहिए।

शर्मा : क्या मैं अनुरोध कर सकता हूँ कि आप अब गम्भीर होकर बैठें ?

मोहन : मैं बिलकुल गम्भीर होकर यह बात कह रहा हूँ।

शर्मा : आप बिलकुल गम्भीर होकर नहीं कह रहे।

रमेश : आप कैसे कह सकते हैं कि ये गम्भीर होकर नहीं कह रहे ? सभ्य समाज में हमेशा लेडीज़ एन्ड जेन्टलमेन कहा जाता है, जेन्टलमेन एन्ड लेडीज़ नहीं।

शर्मा : अच्छा, अच्छा। मैं आपका संशोधन स्वीकार करता हूँ।

रमेश : आपका मतलब है, आप मिस्टर मोहन का संशोधन स्वीकार करते हैं।

शर्मा : मेरा मतलब है, मैं मिस्टर मोहन का संशोधन स्वीकार करता हूँ। बहनो और भाइयो...

सत्यपाल : मैं एक बात कह सकता हूँ ?

शर्मा : कहिए।

सत्यपाल : बहनो और भाइयो, यह एक झूठा स्टेटमेंट नहीं है ?

दीन दयाल : बात करने का मुहावरा ऐसा है, यार।

सत्यपाल : लेकिन यह झूठा मुहावरा नहीं है ? क्या शर्मा साहब कह सकते हैं कि जितनी महिलाएँ यहाँ बैठी हैं...

प्रेम प्रकाश : आप पर्सनल बातें बीच में नहीं ला सकते।

सत्यपाल : मैं कोई पर्सनल बात बीच में नहीं ला रहा। मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि हमें इस मुहावरे की जगह कोई दूसरा मुहावरा इस्तेमाल करना चाहिए जो कि लेडीज़ एन्ड जेन्टलमेन की तरह न्यूट्रल हो।

मोहन : लेडीज़ एन्ड जेन्टलमेन की तरह न्यूट्रल ? ग्रामर ठीक है आपकी ?

सत्यपाल : मैं मुहावरे की बात कर रहा हूँ।

प्रेम प्रकाश : वह मुहावरा भी न्यूट्रल किस तरह से है ? किसी भी सभा में बैठी हुई सब लेडीज़ लेडीज़ नहीं होतीं।

गुरप्रीत : दिस इज़ टू मच।

मनोरमा : आप इनडायरेक्टली हमारा अपमान कर रहे हैं।

प्रेम प्रकाश : मैं सिर्फ़ इतना कह रहा हूँ कि बहनो और भाइयो, यह मुहावरा उतना ही सही है जितना लेडीज़ एन्ड जेन्टलमेन। इसलिए शर्मा साहब को आगे चलने दिया जाय।

कपूर : चलिए शर्मा साहब।

शर्मा : **(फिर गला साफ़ करके)** आप सब जानते हैं कि लो ग्रेड वर्कर्ज़ वेलफ़ेयर सोसाइटी की स्थापना किस उद्देश्य से की गयी है। लगातार बढ़ती महंगाई के इस ज़माने में हमारे जैसे सब लोग अपने लिए खान-पान के मामूली साधन जुटाने में भी असमर्थ हैं। इसलिए हम चाहते हैं कि हम अपने वर्ग के लोगों के वेलफ़ेयर की ऐसी स्कीमें सरकार के सामने रखें, और उन्हें मनवाने के लिए जितना ज़ोर सरकार पर डाल सकें, डालें जिससे कि...मेरा मतलब है, ऐसी स्कीमें जो कि... जैसे पिछली वार सरकार से ज़्यादा से ज़्यादा छोटे कर्ज़ों की माँग की गयी थी...

दीन दयाल : उस माँग का अब तक हुआ भी है कुछ ?

कपूर : यह सवाल बाद में उठाइएगा।

दीन दयाल : बाद में क्यों ? अगर उसी बारे में अब तक कुछ नहीं हुआ...

कपूर : क्यों शर्मा, हुआ है उस बारे में कुछ ?

शर्मा : थोड़ा बहुत हुआ है...या नहीं भी हुआ, तो होने की आशा की जा सकती है। फ़िलहाल हम अपने आज के एजेंडा को ध्यान में रखें।

मोहन : आज का एजेंडा क्या है ?

शर्मा : मैं उसी पर आ रहा हूँ। आज हम सरकार के सामने यह ठोस सुझाव रखना चाहते हैं कि...मेरा मतलब है

कि आबादी बढ़ जाने से शहर बी ग्रेड से ए ग्रेड हो जाते हैं, लेकिन जहाँ तक हम लोगों का ताल्लुक है... कहना चाहिए कि लो ग्रेड वर्कर्ज़ की ज़िन्दगी लो ग्रेड से लोअर ग्रेड होती जाती है, इसलिए हमारे लिए ज़रूरी है कि...और हमें सिर्फ़ प्रस्ताव ही पास नहीं करना, उसके लिए, उसे मनवाने के लिए, पूरी कोशिश भी करनी है कि एक-डेढ़ साल के अन्दर... जैसे इतनी कॉलोनीज़ हैं, उसी तरह एक निम्न-स्तर गृह-निर्माण योजना के अन्तर्गत...

कपूर : क्या ? क्या ?

शर्मा : निम्नस्तर गृह-निर्माण योजना ...

कपूर : इसका मतलब ?

रमेश : घटिया किस्म के घर बनाने की स्कीम।

कपूर : **(अविश्वास के स्वर में)** नहीं-नहीं...

सत्यपाल : घर बनाने की घटिया किस्म की स्कीम।

कपूर : नहीं-नहीं।

दीन दयाल : वह स्कीम, जिसके मातहत निचले दर्जे के घर बनाये जायें।

प्रेम प्रकाश : निचले दर्जे के घर तो सारे देश में हैं ही। उनके लिए सरकार की और स्कीम बनाने की क्या ज़रूरत है ?

मनोरमा : ही मोज़ हाउसेज़ फ़ार लो ग्रेड वर्कर्ज़।

कपूर : आई सी, आई सी।

शर्मा : तो कहने का मतलब है कि ऐसी एक योजना हो जिससे...वह सहकारी योजना भी हो सकती है और छोटे कर्ज़ों की योजना का हिस्सा भी...एक सुझाव था कि घर नीलाम किये जायें, लेकिन मैं उसके पक्ष में नहीं हूँ...क्योंकि नीलामी जो है, वह समाजवादी नीति नहीं है...उसमें बड़ा छोटे को निगल जाता है

और छोटा...वैसे लाटरी भी डाली जा सकती है घरों की...पर योजना जो भी हो, ऐसी होनी चाहिए कि उसका लाभ हमारे सब सदस्यों को हो सके।

दीन दयाल
प्रेम प्रकाश } : हियर हियर !

शर्मा : क्योंकि घर एक ऐसी चीज है जो हर आदमी की बुनियादी ज़रूरत है, उसकी सुख-शान्ति का आधार है। आदमी काम करता है कमाने के लिए। कमाता है आराम पाने के लिए। और सही माने में आराम वह तभी पा सकता है जब उसके पास अपना एक ऐसा घर हो जिसमें...सर्दी हो या गर्मी, दुख हो या सुख... एक ऐसी जगह जहाँ ..जहाँ...जहाँ पर वह...उन लोगों के साथ...उन लोगों के साथ जो कि उसका परिवार है...हम में से हर एक का अपना परिवार है...उस परिवार के साथ...वह आदमी...वह आदमी...

आँखें गुरप्रीत के चेहरे पर अटक जाती हैं, जिससे जबान और अटकने लगती है।

मैं हर परिवार की बात नहीं कहता...कई बार...कुछ परिवारों में...कुछ ऐसे परिवार भी होते हैं...जिनमें ...जिनमें...वह भी होता है...मतलब कलह-क्लेश होता है...पर क्यों होता है? उस कलह-क्लेश के कारण...उसके कारण...आदमी के लिए...किसी भी आदमी के लिए...घर की आवश्यकता...जो सुख-शान्ति वह चाहता है...उसकी आवश्यकता...एक अंदरूनी आवश्यकता...जैसे आज ही समाचार था... कि एक आदमी ने...अपने पूरे परिवार के साथ...पूरे परिवार को उसने ज़हर दे दिया...और उसके

साथ...उसके बाद...स्वयं भी आत्महत्या करने का प्रयत्न किया है...

रमेश, सत्यपाल : हियर हियर !

कपूर : **(डस्टर से मेज़ ठोंकता हुआ)** आर्डर-आर्डर !

शर्मा : जानने की बात यह है...कि ऐसा जब भी होता है... जब भी ऐसा होता है...तो उसके मूल में...यदि उसके मूल कारणों की खोज की जाय तो...तो पता चलेगा कि...कहीं न कहीं...अवश्य कहीं न कहीं...और यह बात किसी के लिए भी सच हो सकती है...कि कहीं न कहीं...कुछ न कुछ ऐसा है कि...हो सकता है कि मैं अपने विषय से थोड़ा भटक गया हूँ...परन्तु यह इसलिए है कि...यदि हम सोचना चाहें, तो पता चल सकता है कि...वह कुछ-न-कुछ क्या है।

जेब से रूमाल निकाल कर माथे का पसीना पोंछता है।

दीन दयाल : शर्मा, पानी पी लो थोड़ा। राम भरोसे, शर्मा को एक गिलास पानी देना।

शर्मा : मुझे पानी नहीं चाहिए।

दीन दयाल : थोड़ा पी लो, तरावट आ जायगी।

शर्मा : नहीं, नहीं। **(राम भरोसे की तरफ़)** पानी नहीं चाहिए।

प्रेम प्रकाश : चाय मंगवा लो।

शर्मा : नहीं, चाय भी नहीं चाहिए। मैं जो बात आपके सामने रख रहा हूँ...

कपूर : सीधे आज का परस्ताव ही क्यों नहीं पढ़ देते ? जो बात है, वह सब लोग जानते हैं।

रमेश : बोल लेने दीजिए उन्हें। अगली मीटिंग जाने कब होगी।

सत्यपाल : शर्मा साहब, सीधे उस बात पर आ जाइए...जब से इंदिरा सरकार बनी है, तब से...

रमेश : बल्कि उससे भी आगे से शुरू कीजिए...जब से आपने सेक्रेटरी पद सम्भाला है, तब से...

कपूर : आर्डर-आर्डर। शर्मा, तुम परस्ताव पढ़ दो अब।

संतोष : क्षमा कीजिए, परस्ताव नहीं, प्रस्ताव।

कपूर : परस्ताव।

संतोष : **(ज़ोर दे कर)** प्रस्ताव।

कपूर : **(ज़ोर दे कर)** परस्ताव।

दीन दयाल : पी ए आर ए एस नहीं, पी आर ए एस...प्रस्ताव।

कपूर : जो भी हो वह रेज़ोल्यूशन की हिन्दी। वह पढ़ दो तुम।

शर्मा : तो मैं आपका अधिक समय न ले कर आपके सामने प्रस्ताव पेश कर रहा हूँ।

अपनी फाइल खोलता है। फिर उसे आगे पीछे पलटने लगता है।

प्रस्ताव है...प्रस्ताव था...

रमेश : था, मतलब खो गया कहीं ?

शर्मा : नहीं, इसी फाइल में है...मतलब इसी फाइल में था... अभी सुबह मैंने ड्राफ्ट बनाया था...

सत्यपाल : किसी और फाइल में तो नहीं है ?

शर्मा : और किस फाइल में हो सकता है ?

सत्यपाल : गुरप्रीत जी की फाइल देख लीजिए। उसमें हो शायद।

शर्मा : **(सख़्त पड़ कर)** उनके पास कोई फाइल नहीं है।

सत्यपाल : तो हो सकता है, उनके बटुवे में हो।

गुरप्रीत : **(सख़्त पड़ कर)** इनका प्रस्ताव मेरे बटुवे में ? आप कहना क्या चाहते हैं ?

सत्यपाल : नाराज़ होने की बात नहीं। क्योंकि प्रस्ताव खो गया

है, इसलिए मैंने सोचा कि हो सकता है इधर-उधर पड़ा देख कर आपने अपने बटुवे में सम्भाल लिया हो।

गुरप्रीत : **(उसी तरह सख़्त)** मेरे बटुवे में ऐसी फ़ालतू चीज़ों के लिए जगह नहीं है।

रमेश : क्या कहा आप ने ? फ़ालतू या पालतू ?

गुरप्रीत : **(और भी सख़्त)** रमेश चोपड़ा !

रमेश : प्रेजेंट मिस !

कपूर : आर्डर-आर्डर !

दीन दयाल : शर्मा, फाइल में नहीं है, तो कहीं न कहीं तो होगा ही। एक बार पतलून की जेब में देख लो।

शर्मा : पतलून की जेव में कैसे हो सकता है ? **(दोनों जेबें टटोलता है)** घर से चलते समय मैंने फाइल में रखा था। **(जेबों का सामान निकाल कर)** पतलून में सिर्फ रूमाल है और तीस पैसे हैं...

सत्यपाल : सिर्फ तीस पैसे ? ह्वाट पिटी ?

प्रेम प्रकाश : पतलून में नहीं है, तो कोट की जेबों में देख लो।

दीन दयाल : कोट की जेबें सिली हुई हैं। आज ही ड्राईक्लीन हो कर आया लगता है।

प्रेम प्रकाश : तो, अन्दर कमीज की जेब में हो शायद ?

शर्मा : कमीज़ में जेब नहीं है। मैं जेब वाली कमीज़ नहीं पहनता।

प्रेम प्रकाश : फिर तो एक ही बात हो सकती है। भाग कर घर पर देख आओ। शायद बच्चों ने निकाल लिया हो।

दीन दयाल : बच्चों को प्रस्ताव का क्या करना है ?

प्रेम प्रकाश : खेल रहे होंगे।

सत्यपाल : या वहाँ मोहल्ले में पेश कर रहे होंगे। हो सकता है, अब तक उन्होंने पास भी कर दिया हो।

कपूर : आर्डर-आर्डर...मेरा ख़याल है शर्मा, तुम जल्दी से नया ड्राफ्ट बना लो।

शर्मा : नया ड्राफ्ट ? नया ड्राफ्ट बन सकता है, लेकिन...

रमेश : उसके लिए इन्हें किताब चाहिए वह...वन हंड्रेड ड्राफ्ट रेजोल्यूशंज।

शर्मा : मैं किताब देख कर ड्राफ्ट नहीं बनाता।

सत्यपाल : ठीक बात है। वरना स्पेलिंग की इतनी गलतियाँ नहीं हो सकतीं।

कपूर : तुम साथ के कमरे में चले जाओ, शर्मा !

शर्मा : **(चुनौती स्वीकारने के स्वर में)** ठीक है। मैं अभी नया ड्राफ्ट बना कर लाता हूँ।

फाइल समेट कर दायीं तरफ़ के दरवाज़े से चला जाता है। राम भरोसे आँख उठा कर उसे जाते देखता है, फिर सिर हिलाता है।

कपूर : **(जम्हाई रोक कर)** उतनी देर अब क्या करना चाहिए ?

दीन दयाल : आप बतायें।

कपूर : आप लोग बताइए।

दीन दयाल : जो चेयरमैन की रूलिंग हो।

कपूर : मैं काहे का चेयरमैन हूँ ? चेयरमैन तो आज आया ही नहीं।

रमेश : आप अपना वह भाषण दे दीजिए...असूल कहता है कि...

कपूर : नहीं-नहीं, बहुत हो चुका वह। बोर हो गये।

रमेश : आप भी बोर हो गये ?

कपूर : मुझे खुद भी तो सुनना पड़ता है।

दीन दयाल : तो मनोरमा जी से कहा जाय, ये गीत सुना दें।

प्रेम प्रकाश : ये तो मीटिंग के अन्त में सुनाती हैं।

दीन दयाल : हाँ हाँ...आज पहले सुना दें।

प्रेम प्रकाश : **(दबे स्वर में)** पहले मोहन से कविताएँ सुन ली जायें।

दीन दयाल : मैं कहता हूँ, पहले गीत हो जाने दो।

प्रेम प्रकाश : मैं कहता हूँ, पहले कविताएँ हो जाने दो।

दीन दयाल : गीत में देर कम लगती है।

प्रेम प्रकाश : इसीलिए तो कह रहा हूँ। बाद में कविताओं में बहुत देर लग जाती है। **(ऊँचे स्वर में)** मेरा प्रस्ताव है कि मनोरमा जी गीत सुनायें।

रमेश : मैं इसका समर्थन करता हूँ।

दीन दयाल : मेरा प्रस्ताव है कि मोहन अपनी कविताएँ सुनायें।

सत्यपाल : मैं इसका समर्थन करता हूँ।

संतोष : मेरा प्रस्ताव है कि सत्यपाल सब सदस्यों की नक़लें सुनायें।

रमेश : मैं इसका भी समर्थन करता हूँ।

कपूर : और मेरा प्रस्ताव है कि गुरप्रीत जी जिस प्रस्ताव का समर्थन करें, वह प्रस्ताव मान लिया जाय।

दीन दयाल : इसका समर्थन कौन करता है।

कपूर : मैं खुद ही समर्थन भी करता हूँ।

प्रेम प्रकाश : आप खुद अपने प्रस्ताव का समर्थन नहीं कर सकते, इसलिए आपका प्रस्ताव कैंसिल हुआ।

सत्यपाल : रमेश ने एक साथ दो-दो प्रस्तावों का समर्थन किया है, इसलिए वे दोनों प्रस्ताव भी कैंसिल हुए। अब सिर्फ दीन दयाल जी का प्रस्ताव रह जाता है कि मोहन अपनी कविताएँ सुनायें। **(मोहन की तरफ़ देख कर)** मोहन! अरे, इसे क्या हुआ है?

सब लोग देखते हैं कि मोहन आँखें मूंद कर डेस्क की पीठ से टेक लगाये है।

मोहन !

मोहन हड़बड़ा कर आँखें खोलता है।

मोहन : क्या बात है ?

सत्यपाल : उठ जाओ, तुम्हें कविताएँ सुनानी हैं।

मोहन : प्रस्ताव पास हो गया ?

सत्यपाल : वह साथ के कमरे में ड्राफ्ट हो रहा है।

मोहन : कौन ड्राफ्ट कर रहा है ?

सत्यपाल : शर्मा।

मोहन : तब ड्राफ्ट हो जाने दो। हो जाय, तो जगा देना।

सत्यपाल : पर इस बीच दूसरा प्रस्ताव पास हो गया है।

मोहन : क्या ?

सत्यपाल : कि तब तक तुमसे तुम्हारी कविताएँ...

शर्मा दायीं तरफ़ से आता है।

शर्मा : मिल गया।

कपूर : वही ड्राफ्ट जो खो गया था ?

शर्मा : हाँ...बाहर कूड़े में था।

कपूर : कूड़े में ?

शर्मा : आते हुए गिर गया होगा। जमादार ने झाड़ू से कूड़े में डाल दिया था।

कपूर : अच्छा है, मिल गया। वक़्त की बचत हो गयी। अब तुम जल्दी से इसे पढ़ दो।

शर्मा पहले वाली जगह पर उसी मुद्रा में खड़ा हो जाता है।

शर्मा : **(गला साफ़ करके)** प्रस्ताव की रूप रेखा इस प्रकार है... **(कागज़ देखता है)** हम, लो ग्रेड वर्कर्ज़ वेल्फ़ेयर सोसाइटी के सब सदस्य...

संतोष : मुझे आपत्ति है। जब प्रस्ताव हिन्दी में है, तो संस्था का नाम भी हिन्दी में होना चाहिए।

दीन दयाल : मुझे भी आपत्ति है। जब सब सदस्य यहाँ उपस्थित नहीं हैं, तो प्रस्ताव में सब सदस्यों का उल्लेख कैसे किया जा सकता है ?

रमेश : मैं पहली आपत्ति का समर्थन करता हूँ।

सत्यपाल : मैं दूसरी आपत्ति का समर्थन करता हूँ।

कपूर : आप पहले पूरा ड्राफ्ट सुन लें। उसके बाद जो संशोदन करना हो, करें।

संतोष : संशोदन नहीं, संशोधन।

कपूर : संशोदन।

संतोष : धन धन धन...संशोधन।

कपूर : धन धन धन...संशोदन।

संतोष : सं...शो...धन।

कपूर : सं...शो...दन।

दीन दयाल : डी ए एन् नहीं, डी एच् ए एन्।

कपूर : आप पहले पूरा ड्राफ्ट सुन लें। उसके बाद जो एमेंडमेंट करना हो, करें।

संतोष : परन्तु हिन्दी के प्रस्ताव में संस्था का नाम अंग्रेज़ी में हो, यह राष्ट्रभाषा का अपमान है। आप इनसे कहिए, पहले नाम हिन्दी में कर दें।

कपूर : क्यों शर्मा, लो ग्रेड वर्कर्ज़ वेल्फ़ेयर सोसाइटी की हिन्दी क्या है ?

प्रेम प्रकाश : निचला दर्जा कामगार हितकारी सभा।

शर्मा : यह गलत है। इसकी असली हिन्दी है निम्नस्तर-कर्मचारी-कल्याण समाज।

प्रेम प्रकाश : यह भी गलत है।

शर्मा : यह कैसे गलत है ?

प्रेम प्रकाश : मेरे वाली हिन्दी कैसे गलत है ?

शर्मा : वह पुरानी हिन्दी है, इसलिए गलत है।

प्रेम प्रकाश : यह मुश्किल हिन्दी है, इसलिए गलत है।

शर्मा : आप हिन्दी जानते हैं ?

प्रेम प्रकाश : आप अंग्रेज़ी जानते हैं ?

शर्मा : आप लड़ना चाहते हैं ?

प्रेम प्रकाश : जी नहीं...आप...

कपूर : दोस्तो, वक़्त बहुत हो रहा है। काम जल्दी होने दीजिए, जल्दी करो, शर्मा !

शर्मा : मैं आपकी दोनों आपत्तियाँ स्वीकार कर रहा हूँ। **(संशोधन करके)** तो अब प्रस्ताव इस प्रकार है... **(कागज़ देखता है)** हम, निम्नस्तर-कर्मचारी-कल्याण समाज के सब उपस्थित सदस्य...

दीन दयाल : यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास होगा ? इसलिए सब उपस्थित सदस्यों का उल्लेख भी नहीं किया जा सकता।

शर्मा : तो आप चाहते हैं, मैं प्रस्ताव पेश न करूँ ?

दीन दयाल : मैंने यह कहा है ? मैंने तो कहा है, शब्द 'सब' बीच में नहीं होना चाहिए।

शर्मा : मैं जब तक प्रस्ताव पूरा नहीं पढ़ लेता, तब तक इसमें कोई संशोधन नहीं करूँगा।

रमेश : यह आप कैसे कह सकते हैं ? अभी-अभी आपने दो संशोधन स्वीकार किये हैं।

सत्यपाल : और जब दो-दो संशोधन स्वीकार कर सकते हैं, तो तीसरा क्यों नहीं कर सकते ?

कपूर : घड़ी पर नज़र रख कर चलो, शर्मा !

शर्मा : तो लीजिए, मैं तीसरा संशोधन भी स्वीकार कर लेता हूँ। **(कागज़ देखता है)** हम, निम्नस्तर-कर्मचारी कल्याण समाज के उपस्थित सदस्य बहुत तीव्रता से यह अनुभव करते हैं कि सामाजिक पुनर्निर्माण की सरकारी

नीतियों में हमारे हितों का ठीक से संरक्षण नहीं हो पा रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश के बदलते आर्थिक ढाँचे में निम्नस्तर कर्मचारियों के लिए समुचित निम्नस्तर आवास-व्यवस्था सरकार का एक प्रमुख उत्तरदायित्व है। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह की...निर्वाह की...एक शब्द मिट गया है...क्या शब्द है ?...निर्वाह की...

कपूर : मिट कैसे गया ?

शर्मा : पता नहीं कैसे...

रमेश : जमादार की झाड़ू से मिट गया होगा।

शर्मा : निर्वाह की...निर्वाह की...किस उससे ?

संतोष : दृष्टि से ?

शर्मा : हाँ, हाँ...दृष्टि से सरकार को चाहिए कि शीघ्र से शीघ्र एक निम्नस्तर-गृह-निर्माण योजना बना कर सब ऐसे कर्मचारियों को, जिनकी कि सेवा पाँच साल से अधिक की है, छोटी-छोटी किस्तों पर एक-एक घर उप उप उप...

दीन दयाल : एक और शब्द मिट गया ?

शर्मा : पूरा नहीं मिटा। घर उप उप उप...

दीन दयाल : उपद्रव ?

शर्मा : उपद्रव कराने का बीड़ा...नहीं, यह नहीं हो सकता।

संतोष : उपलब्ध ?

शर्मा : हाँ हाँ...उपलब्ध कराने का बीड़ा उठाये।

कपूर : इतना ही है या और भी है ?

शर्मा : है तो और भी, पर वह छोड़ा जा सकता है।

कपूर : जो छोड़ा जा सकता है, उसे छोड़ दो। तो सज्जनो, अब इसका समर्थन कौन करता है ?

रमेश : समर्थन का क्या है, मैं समर्थन कर देता हूँ। **(मास्टर**

की कुर्सी के पास आकर) मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ।

लौट कर अपनी जगह पर चला जाता है।

मोहन : (**बैठे-बैठे**) मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ।

सब लोग घूम कर उसकी तरफ़ देखते हैं।

कपूर : इसका मतलब है, अभी और वक़्त लगेगा।

प्रेम प्रकाश : तुम्हारी नींद कब खुली !

दीन दयाल : तुमने प्रस्ताव सुना भी है ?

मोहन : सब सुना है, इसीलिए विरोध कर रहा हूँ।

दीन दयाल : प्रस्ताव में कहा क्या गया है ?

मोहन : क्या कहा गया है ?

दीन दयाल : तुम बताओ।

मोहन : आप बताइए।

दीन दयाल : कपूर साहब, आप बताइए इसे।

कपूर : मैं ? मुझे तो हिन्दी समझ ही नहीं आती।

संतोष : प्रस्ताव अपने में बिल्कुल स्पष्ट है।

मोहन : क्या स्पष्ट है ?

संतोष : क्या स्पष्ट नहीं है ?

मोहन : बहुत कुछ स्पष्ट नहीं है।

संतोष : जैसे ?

मोहन : जैसे...

कपूर : तुम्हें ज़्यादा कुछ कहना है।

मोहन : बहुत कुछ कहना है।

कपूर : तो यहाँ शर्मा की जगह पर आ जाओ।

शर्मा अनमने भाव से नीचे उतर जाता है। मोहन उसकी जगह पर आ खड़ा होता है।

मोहन : प्रस्ताव में तीन जगह एक शब्द आया है...निम्नस्तर। इसका अर्थ है, चूँकि आज हम निम्नस्तर के कर्मचारी हैं, इसलिए जीवन भर हमें निम्नस्तर के ही बने रहना है। हमारे लिए आवास-व्यवस्था हो, तो कैसी ? निम्नस्तर की। हमारे लिए घर बनाये जायें, तो कैसे ? निम्नस्तर के। इसके बाद शायद हम लोग यह माँग करें कि हमारे निम्नस्तर बच्चों के लिए निम्नस्तर बाल-संरक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत निम्नस्तर पालन की एक योजना बनायी जाये जिससे हर ऐसे बच्चे को, जिसकी कि उम्र पाँच साल से अधिक की है, कम-से-कम आधा पाव दूध उपलब्ध हो सके।

रमेश : हियर-हियर ;

कपूर : आपने प्रस्ताव का समर्थन किया है और उसके विरोध में भी हियर-हियर कर रहे हैं ?

रमेश : **(पहले की तरह उठ कर और मास्टर की कुर्सी के पास आ कर)** मैं अपना समर्थन वापस लेता हूँ।

वापस जा बैठता है।

शर्मा : आप अपना समर्थन वापस कैसे ले सकते हैं ? समर्थन कभी वापस नहीं लिया जाता।

रमेश : क्यों नहीं लिया जाता ?

सत्यपाल : जब प्रस्ताव वापस लिया जा सकता है, तो समर्थन भी वापस लिया जा सकता है।

रमेश : मुझे अब विश्वास हो गया है कि आपका प्रस्ताव गलत है। इसलिए मैंने अपना समर्थन वापस ले लिया है।

कपूर : **(मोहन से)** तुम्हें और भी कुछ कहना है अभी ?

मोहन : बहुत कुछ कहना है।

कपूर : **(घड़ी देख कर उठता हुआ)** तो मैं आप लोगों से

इजाज़त चाहूँगा। मुझे एक जगह पहुँचना है ज़रूरी...

शर्मा : **(आगे आ कर)** नहीं-नहीं, कपूर साहब !

कपूर : भई, देखो शर्मा...

शर्मा : नहीं-नहीं, कपूर साहब !

कपूर : भई, ऐसा है कि...

शर्मा : **(कपूर को बाँह से पकड़ कर कुर्सी पर बिठाता है)** नहीं-नहीं, आप नहीं जा सकते।

कपूर : **(मिन्नत और शिकायत के स्वर में)** भई, मेरा बहुत ज़रूरी है जाना।

शर्मा : प्रस्ताव उससे ज़्यादा ज़रूरी है।

कपूर : उससे ज़्यादा ज़रूरी नहीं है।

शर्मा : उससे ज़्यादा ज़रूरी है।

कपूर : नहीं है।

शर्मा : है।

कपूर : नहीं है।

शर्मा : है।

कपूर : तुम किसी और को बना लो चेयरमैन थोड़ी देर के लिए।

शर्मा : आप रुख़ देख ही रहे हैं। आप के बग़ैर यह प्रस्ताव पास नहीं हो सकता।

कपूर : क्यों नहीं हो सकता ?

शर्मा : नहीं हो सकता।

कपूर : क्यों नहीं हो सकता ?

शर्मा : नहीं हो सकता।

कपूर : जहाँ मुझे पहुँचना है, वहीं बल्कि मनोरमा जी को भी पहुँचना है। पूछ लो इनसे।

फिर से उठने की चेष्टा करता है।

शर्मा : **(फिर से उसे बिठा कर)** तब तो आप हरगिज़ नहीं जा सकते। मनोरमा जी का वोट बहुत इंपार्टेंट है।

कपूर : **(असहाय भाव से मनोरमा को देखता हुआ)** आप क्या कहती हैं ?

मनोरमा : **(उससे आँखें बचाती है)** मैं कुछ नहीं कहती।

कपूर : सात बज गया है।

मनोरमा : मुझे आठ से पहले घर पहुँच जाना है।

कपूर : **(फिर से उठता है)** इसलिए शर्मा...

शर्मा : **(फिर से बिठाता है)** नहीं-नहीं कपूर साहब !

मनोरमा : मैं यहाँ से सीधी घर जाऊँगी।

कपूर : सीधी घर जायेंगी ?

मनोरमा : सीधी घर जाऊँगी।

कपूर : तो वह जहाँ चलना था ?

मनोरमा : मैं नहीं चल सकूँगी।

कपूर : क्या कह रही हैं ?

मनोरमा : मैं नहीं चल सकूँगी। आठ से पहले मेरा घर पहुँचना ज़रूरी है। बच्चों को खाना खिलाना है।

कपूर : वह तो साढ़े आठ भी खिलाया जा सकता है।

मनोरमा : आठ तक वे भी घर लौट आयेंगे।

कपूर : **(निढाल होकर)** तब तो...तब तो...ख़ैर, ठीक है शर्मा ! तुम प्रस्ताव पास करा लो अपना। **(मोहन से)** बोलिए आप।

शर्मा : **(मोहन से)** बोलिए आप।

मोहन : सबसे पहले मैं आपका ध्यान इस चीज की ओर दिलाना चाहता हूँ कि हमारे अंदर यह निम्नस्तर की वृत्ति क्या है, क्यों है।

शर्मा : विषय से बाहर मत जाइए।

मोहन : आप बीच में मत टोकिए। यह निम्नस्तर की वृत्ति

एक संक्रामक रोग की तरह है, जिसके कीटाणु...

कपूर : जिसके क्या ?

मोहन : कीटाणु...जर्म्स...हमारी नस-नस में फैल जाते हैं और रात-दिन दुगने, चौगुने, दसगुने, सौगुने होते जाते हैं। इनसे आदमी की महत्त्वाकाँक्षा मर जाती है, कार्यशक्ति जवाब दे जाती है, किसी भी चीज़ को लेकर न कह सकने का साहस उसमें नहीं रह जाता। वह केवल दूसरों का मुँह ताकने और हाँ-हाँ करने की एक मशीन में बदल जाता है। जिसका सारा ध्यान निम्नस्तर की कुछ आवश्यकताओं को छोड़ कर और किसी चीज़ पर नहीं टिक पाता। परिणाम होता है कुछ निम्नस्तर की माँगें, कुछ निम्नस्तर के प्रस्ताव...

रमेश, सत्यपाल : (**डेस्क थपकते हैं**) हियर-हियर !

शर्मा : यह मुझे गाली है।

मोहन : यह गाली नहीं है।

शर्मा : गाली है।

मोहन : गाली नहीं है।

शर्मा : है।

मोहन : नहीं है।

दीन दयाल : मिस्टर चेयरमैन, आप फैसला कीजिए, यह गाली है या नहीं है।

कपूर : यहाँ हिन्दी-से-हिन्दी की डिक्शनरी मिल सकती है ?

प्रेम प्रकाश : डिक्शनरी की क्या ज़रूरत है ? सन्तोष जी यहाँ हैं।

कपूर : क्यों सन्तोष जी...?

संतोष : निम्नस्तर के दो अर्थ हैं। एक न्यून स्तर। दूसरा हीन स्तर।

कपूर : उन दोनों के क्या अर्थ हैं ?

संतोष : न्यून स्तर के भी दो अर्थ हैं।

कपूर : माफ़ कीजिए, जितने भी अर्थ हैं, उनमें कोई गाली तो नहीं है ?

संतोष : गाली हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। यह शब्द का प्रयोग करने वाले की भावना पर है।

कपूर : मिस्टर मोहन, आपकी भावना गाली देने की थी ?

मोहन : बिल्कुल नहीं।

कपूर : तो आगे चलिए **(शर्मा से)** इन्होंने गाली नहीं दी।

शर्मा : इन्होंने मेरे प्रस्ताव को निम्नस्तर का कहा है।

कपूर : यार, यही लफ़्ज़ तुमने भी तीन बार इस्तेमाल किया है। अब आगे चलने दो। **(मोहन से)** चलिए।

मोहन : यह निम्नस्तर की वृत्ति हमारे अन्दर इस तरह घर कर गयी है कि हमारी जीवन-सम्बन्धी धारणा ही निम्न-स्तर की होकर रह गयी है। हम हँसते हैं, तो वह हँसी निम्नस्तर की होती है। प्रेम करते हैं, तो वह प्रेम निम्नस्तर का होता है...

मनोरमा : आप किस विषय में बोल रहे हैं ? प्रस्ताव से इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

मोहन : सम्बन्ध है।

मनोरमा : नहीं है।

मोहन : है।

गुरप्रीत : **(उठती हुई)** भई, मैं जा रही हूँ। आप लोग प्रस्ताव पास करते रहिए।

मनोरमा : **(उठती हुई)** मैं भी चल रही हूँ। यहाँ मीटिंग नहीं होती, बस, यही सब होता है।

शर्मा : **(हताश भाव से)** रुकिए, रुकिए आप लोग।

कपूर : **(खड़ा होकर)** जाइए नहीं, मैं दस मिनट में मीटिंग ख़त्म कर रहा हूँ।

वे दोनों दायीं तरफ़ से निकल जाती हैं।

शर्मा : सुनिए मनोरमा जी...

कपूर : ठहरिए गुरप्रीत जी...

कुर्सी छोड़कर उन दोनों के पीछे जाने लगता है, पर शर्मा उसे बाँह से पकड़ कर रोक लेता है।

शर्मा : कम से कम आप तो मत जाइए।

कपूर : लेकिन शर्मा...

शर्मा : **(उसे कुर्सी पर बिठाता है)** अब साथ ही चलेंगे थोड़ी देर में।

कपूर : **(निढाल होकर मोहन से)** आपको और भी कुछ कहना है अभी ?

मोहन : केवल इतना कहना है कि इस निम्नस्तर की वृत्ति से छुटकारा पाने के लिए हमें प्रस्ताव यह पास करना चाहिए कि आज से हम कहीं भी, किसी भी रूप में, अपने साथ इस शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे। इसलिए सबसे पहले हम अपनी संस्था का नाम बदलकर...

शर्मा : जब तक पहले प्रस्ताव पर विचार नहीं होता, तब तक आप दूसरा प्रस्ताव पेश नहीं कर सकते।

मोहन : यह दूसरा प्रस्ताव नहीं है।

शर्मा : बिल्कुल दूसरा प्रस्ताव है।

मोहन : नहीं है।

कपूर : **(मेज़ पर मुक्का मारता है)** है-है-है ! मैं आपको अब और बोलने की इजाज़त नहीं दे सकता। आप अपनी जगह पर लौट जाइए।

मोहन : लेकिन अध्यक्ष महोदय...!

कपूर : आप अपनी जगह पर लौट जाइए। मैं अब शर्मा के प्रस्ताव पर वोट लूंगा।

रमेश : आप वोट नहीं ले सकते। क्योंकि और लोगों को भी प्रस्ताव पर बोलना है।

कपूर : अब उसके लिए वक़्त नहीं है।

सत्यपाल : पर वक़्त क्यों नहीं है ?

कपूर : क्योंकि नहीं है।

सत्यपाल : पर क्यों नहीं है ?

कपूर : आप एक लाइन में कहिए, आपको क्या कहना है।

सत्यपाल : मैं एक लाइन में नहीं कह सकता।

कपूर : तो मत कहिए।

मोहन : लेकिन अध्यक्ष महोदय...।

कपूर : (गुस्से से) आपसे कहा है, आप लौट जाइए अपनी जगह पर।

मोहन : आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

कपूर : आप चेयर का अपमान कर रहे हैं।

मोहन : आपको इस तरह बोलने का कोई अधिकार नहीं है।

कपूर : आपको इस तरह खड़े रहने का कोई अधिकर नहीं है। जो लोग प्रस्ताव के हक़ में हैं, वे लोग अपने हाथ...

मोहन : आप प्रस्ताव पर वोट नहीं ले सकते। पहले आप अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगें।

कपूर : मुझे किसी से क्षमा नहीं माँगनी है। जो लोग हक़ में हैं...।

सत्यपाल : आप वोट नहीं ले सकते, क्योंकि अभी तक प्रस्ताव का समर्थन नहीं हुआ।

शर्मा : समर्थन हो चुका है।

रमेश : नहीं हुआ। मैंने अपना समर्थन वापस ले लिया है।

कपूर : दीन दयाल जी, आप समर्थन कर दें।

दीन दयाल : मैं समर्थन करता हूँ।

सत्यपाल : आप फिर भी वोट नहीं ले सकते, क्योंकि मुझे अभी

प्रस्ताव के बारे में अपने विचार सामने रखने हैं।

शर्मा : आप अपने विचार सामने नहीं रख सकते, क्योंकि आप इस समय सदस्य नहीं हैं। आपका चंदा अभी तक नहीं आया है।

रमेश : जिस दिन आप सेक्रेटरी चुने गये थे, उस दिन आपका भी चंदा नहीं आया था, और आप सदस्य नहीं थे। जो सदस्य न हो, वह सेक्रेटरी कैसे बन सकता है? मैं सेक्रेटरी के चुनाव को चैलेंज करता हूँ।

सत्यपाल : बल्कि जिस दिन यह संस्था बनी थी, और पदाधिकारियों का चुनाव किया गया था, उस दिन किसी का भी चंदा नहीं आया था और कोई भी सदस्य नहीं था। इसलिए मैं इस संस्था के पूरे चुनाव को चैलेंज करता हूँ।

रमेश : और क्योंकि तब के चुने हुए पदाधिकारी इस संस्था को चला रहे हैं, इसलिए मैं इस संस्था को चैलेंज करता हूँ।

कपूर : **(डस्टर से मेज़ को ठोंकता हुआ)** आर्डर-आर्डर-आर्डर! मैंने वोटिंग के लिए कह दिया है। जिन लोगों को एतराज़ है, वे चाहें तो वाक-आउट कर सकते हैं।

रमेश : हम वाक-आउट नहीं करेंगे।

संतोष : **(उठती हुई)** आप लोग कार्यवाही जारी रखिए। मुझे जाने की अनुमति चाहिए।

मोहन : **(नीचे आकर)** ठहरिए संतोष जी। मुझे भी उधर ही जाना है।

संतोष : **(बाहर निकलती है)** आप अपना देख लीजिए। मैं अब और नहीं रुकूँगी।

पल भर की खामोशी। मोहन अनिश्चित भाव से सबकी तरफ़ देखता है।

मोहन : **(आकस्मिक ढंग से)** मैं वाक आउट कर रहा हूँ।

जल्दी से संतोष के पीछे निकल जाता है।

उसके बाद भी पल भर खामोशी रहती है।

कपूर : **(अपने को सहेज कर)** तो अब...।

शर्मा : **(पस्त भाव से)** अब कुछ नहीं हो सकता।

कपूर : क्यों ?

शर्मा : क्योंकि कोरम पूरा नहीं है।

कपूर : लेडीज़ एंड जेंटलमैन...!

प्रेम प्रकाश : माफ़ कीजिए, लेडीज़ सब चली गयी हैं, सिर्फ़ जेंटलमैन बाकी हैं।

कपूर : तो...तो जेंटलमैन, मुझे अफ़सोस है कि कोरम पूरा न होने से मीटिंग अब जारी नहीं रह सकती। मैं मीटिंग बरख़ास्त करता हूँ।

खलबली-सी मच जाती है। रमेश और सत्यपाल डेस्कों पर हाथ मारते हुए 'शेम-शेम' के नारे लगाते हैं। पहले कपूर और शर्मा, फिर प्रेम प्रकाश और दीन दयाल कमरे से चले जाते हैं। रमेश और सत्यपाल को ज़रा बाद में ध्यान आता है कि वे खाली कमरे में 'शेम-शेम' कर रहे हैं। वे दोनों अचानक हाथ रोक कर एक दूसरे की तरफ़ देखते हैं, ठहाका लगाते हैं और बाहर चले जाते हैं।

श्याम भरोसे ऊँघ रहा है। राम भरोसे उसे हिलाता है।

राम भरोसे : उठ भइया, श्याम भरोसे ! तमाशा ख़त्म हुआ।

श्याम भरोसे : **(जाग कर)** बाबू लोग चले गए ?

राम भरोसे : चले गए।

श्याम भरोसे : क्या-क्या पास कर गए ?

राम भरोसे : पास कर गए कि राम भरोसे, राम भरोसे के घर में

रहेगा, श्याम भरोसे, श्याम भरोसे के घर में। और बाबू लोग अपने-अपने घर में रहेंगे।

श्याम भरोसे की आँखें फैल जाती हैं।

श्याम भरोसे : और?

राम भरोसे : और कि मूँगफली के आधे छिलके राम भरोसे साफ़ करेगा, आधे श्याम भरोसे।

श्याम भरोसे आँखें झपकाता है।

श्याम भरोसे : और कुछ नहीं?

राम भरोसे : कुछ नहीं। (**उसे बगल से पकड़कर सीधा खड़ा करता हुआ**) अब सीधा हो जा। बहुत कूड़ा कर गए हैं। साफ़ करना है।

एक झाड़न श्याम भरोसे के हाथ में देता है। दोनों फिर कुर्सियाँ झाड़ने लगते हैं।

एक बीज नाटक

शायद...

पात्र

स्त्री
पुरुष
और...कोई नहीं।

एक साधारण घर। स्त्री और पुरुष। स्त्री खाने की मेज़ से जूठी प्लेटें हटाती हुई। पुरुष ड्रेसिंग गाउन की जेबों में हाथ डाले सामने देखता हुआ।

स्त्री : फिर सोचने लगे?

पुरुष : **(आँखें झपकता हुआ)** नहीं।

स्त्री : थोड़ा टहल क्यों नहीं आते?

पुरुष : मन नहीं है।

स्त्री : **(सब प्लेटों को ट्रे में समा लेने में व्यस्त)** क्या कहा... क्या नहीं है? मैंने सुना नहीं।

पुरुष : **(जेब से सिगरेट निकालता हुआ)** वह माचिस...अभी ली थी तुमने...

स्त्री : थोड़ा टहल आते, तो मन बहल जाता।

पुरुष : वह माचिस...

स्त्री : रोज़ शाम को खाना खाते वक़्त तुम्हारा मन उदास हो जाता है।

तिपाई से माचिस उठा कर उसे दे देती है।

पुरुष : **(सिगरेट सुलगाता हुआ)** जाओ, प्लेटें रख आओ।

स्त्री : तुम कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर चले जाओ...सच कह रही हूँ।

पुरुष 'हूं' कहकर कुहनियों पर झुक जाता है।

पुरुष : जहाँ तक बाहर जाने का सवाल है...

स्त्री ट्रे उठाकर चल देती है । पुरुष शिकायत-भरी नज़र से उसे जाते देखता रहता है। फिर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचता है । स्त्री लौटकर आती है, तो वह उसकी तरफ़ नहीं देखता।

स्त्री : तुम बाहर जाने की बात कर रहे थे...(**अपने हाथ को देखती हुई**) मेरे हाथ का एग्ज़ीमा फिर उभर आया है।

पुरुष : (**हल्की खीझ के साथ**) बाहर कहाँ चला जाऊँ ? और कहीं भी जाकर क्या होगा ?...सब जगहें एक-सी हैं। सब जगह एक-सा लगता है।

अब उसकी आँखें स्त्री की तरफ़ उठ जाती हैं, पर वह अपने हाथ को ही देख रही है ।

स्त्री : उस मरहम से ठीक हो जाया करता था...पर न जाने उसकी डब्बी...मैंने तुमसे पहले भी कहा था कुछ दिनों के लिए सूरत चले जाओ।

पुरुष : (**व्यंग्तापूर्ण स्वर में**) सूरत ! (**फिर याद हो आने से इधर-उधर देखता हुआ**) मैंने अपना पेन कहाँ रख दिया ?...अभी उस वक़्त उससे लिख रहा था... चिट्ठी...

स्त्री : तब तुम कहते थे देव कलकत्ता चला जाय, उसके बाद ही कहीं जाने की सोचूँगा। अब तो देव को ट्रांसफ़र होकर गये भी तीन हफ़्ते हो गये ।...हाथ में इतनी खुजली होती है कि बस...।

पुरुष : देखना कहीं नीचे तो नहीं गिर गया ?...और जाने क्या बात अभी आयी थी दिमाग़ में...अचानक ग़ायब हो गयी।

स्त्री : सच...क्यों नहीं अगले हफ़्ते चले जाते तुम सूरत?... पेन तुम्हारी कमीज़ से टंगा है...वहाँ तुम्हारे इतने दोस्त हैं !

पुरुष : **(कमीज से पेन उतारकर उसे खोलता-बन्द करता हुआ)** सूरत...अब देखो न...ऐसा है कि सूरत...

खाँसी उठ आने से बात पूरी नहीं कर पाता।

स्त्री : कितनी कहती हूँ याद से दवाई ले लिया करो। और सब बातों की याद तुम्हें रहती है, दवाई की याद कभी नहीं रहती।

पुरुष : **(खाँसी से रुके शब्दों को फिर से उठाता हुआ)** सूरत...अगले हफ़्ते नहीं...वहाँ जाना होगा, तो बाद में देखूँगा।

स्त्री : तुम्हारी यह बहुत आदत है।

पुरुष : **(जैसे चुनौती से लड़ता हुआ)** क्या आदत है ?

स्त्री : यही !...पेन कोट की जेब में रख लो, नहीं तो फिर भूल जाओगे और सुबह दफ़्तर जाकर...

पुरुष : मैं तुमसे एक बात कहता हूँ।...मतलब ऐसे ही कभी-कभी सोचता हूँ कि...

स्त्री : यही तो बात है। सोचते तुम बहुत हो। पेन कोट की जेब में रख लो।

पुरुष : ...कि क्यों न कुछ दिनों के लिए किसी पहाड़ पर चला जाऊँ और...

स्त्री : इतनी सर्दी में ? चले जाओ। तुम्हारी मर्ज़ी है। पेन कोट की जेब में रख लो।

पुरुष : ...और कुछ दिन वहाँ बिलकुल अकेला रहूँ ?

जवाब सुनने के लिए रुकता है। मगर फिर इस एहसास के साथ कि जवाब

पहले ही मिल चुका है।

...मगर फिर सोचता हूँ कि इन दिनों पहाड़ पर जाकर मन अकेलेपन से बहुत उचाट होगा।

स्त्री : तुम्हारी मर्ज़ी पर है। मैं तुमसे कुछ नहीं कह सकती।

पुरुष : **(अतिरिक्त गम्भीर होकर)** देखो...जाने की बात मैं इसलिए सोचता हूँ कि...

स्त्री : दार्जिलिंग कैसी जगह है ?

पुरुष : मैं कभी गया नहीं। क्यों ?

स्त्री : ऐसे ही पूछा है।

पुरुष : **(परिस्थिति के प्रति आत्म-समर्पण करने के ढंग से)** अच्छा देखो...कल सुबह से...कल से कोशिश करूँगा कि दफ़्तर के काम में ही ज़्यादा दिलचस्पी लूँ। शायद उसी से थोड़े दिनों में...कुछ दिन देखना चाहिए ट्राई करके।

स्त्री : वह हो गया है...उस आदमी का प्रमोशन...जिसका तुम कराना चाहते थे ?

पुरुष : ऐश-ट्रे देना ज़रा।...कहाँ हुआ है ? उसकी जगह दूसरे का हो गया है...बिलकुल नाकारा आदमी है।...खैर, देव के जाने तक तो मन इसी बात में उलझा था कि देव जाने वाला है, देव जाने वाला है...।

स्त्री : और अब इस बात में उलझा हुआ है कि देव चला गया है, देव चला गया है। **(सहसा व्यस्त होकर)** मैं भुनी हुई मूँगफली लायी थी तुम्हारे लिए। देना भूल ही गयी।

जाकर अलमारी से मूंगफली निकाल लाती है।

पुरुष : सच कितना अजीब है...

स्त्री : क्या ?

पुरुष : ...कि इस बात को हम कभी गिनते ही नहीं।

स्त्री : **(मूँगफली उसकी तरफ़ बढ़ाकर)** किस बात को ?

पुरुष : लोगों के आने-जाने को। **(मूँगफली लेता हुआ)** इससे कितना फ़र्क पड़ जाता है ज़िन्दगी में ! ...अच्छी भुनी हुई है।

स्त्री : **(अपने लिए मूँगफली छीलती हुई)** तुम उबर भी तो नहीं पाते हो किसी चीज़ से ! और हमें इसमें सूझता ही नहीं कि हम क्या अच्छा कर सकते हैं तुम्हारे लिए। हम बस दाल-सब्ज़ी बना लेते हैं...कभी लौकी-टींडा...

स्वर रुआँसा हो जाता है।

हाँ, सच...धक्के खाते फिरते हैं दिन-भर...स्कूल से बाज़ार और बाज़ार से घर—और तुम खुश नहीं रहते फिर भी। मेरे अन्दर हर वक़्त इतना दुःख रहता है तुम्हें लेकर।...छिलके नीचे मत डालो।

पुरुष : **(इस असमंजस में कि हाथ के छिलकों का क्या करें)** मैं सचमुच बहुत गिल्टी महसूस करता हूँ। दफ़्तर में बैठा हुआ भी सोचता रहता हूँ कि...

कुछ समझ में न आने से छिलके एक हाथ से दूसरे हाथ में ले लेता है।

...कि तुम इतनी कोशिश करती हो अपनी तरफ़ से...।

स्त्री : और क्या ? तुम तो सिर्फ़ गिल्टी ही महसूस करते हो।...यहीं मेज़ पर एक तरफ़ रखते जाओ।

पुरुष : पता नहीं क्या है मेरे अन्दर...किस चीज़ की उदासी बनी रहती है हर वक़्त ? **(छिलके मेज़ पर रखता हुआ कुछ आकस्मिक ढंग से)** अभी ख़बरों का वक़्त तो नहीं हुआ न ?

स्त्री : मैंने शाम की ख़बरें सुनी थीं। कोई ख़ास ख़बर नहीं थी।

पुरुष : (**गम्भीर भाव में लौटकर**) लगता है यह नहीं करना, वह करना है। यहाँ नहीं रहना, वहाँ जाना है...।

स्त्री : वह कोई बाहर से आया हुआ है न...कहीं का प्रधान-मन्त्री या कौन ? उसी के बारे में ख़बरें थीं।

पुरुष : ...एक-साथ पचासों चीज़ें हथौड़े मारती रहती हैं दिमाग़ पर। उनमें मिलने वालों के चेहरे भी होते हैं, दफ़्तर की फ़ाइलें भी होती हैं...वह प्रोमोशन का केस ही था जैसे...और चीज़ों के बीच उसी का आरा हर वक़्त दिमाग़ में चलता रहता है।

स्त्री : प्रमोशन किसी का रुका और आरा तुम्हारे दिमाग़ में चलता रहता है !...एक छिलका मुँह पर लगा रह गया है।

पुरुष : यही तो तुम समझती नहीं हो। (**मुँह से छिलका साफ़ करने की कोशिश में**) अगर उसका प्रोमोशन हो जाता, तो मेरा आधा काम...।

स्त्री : (**सहसा**) हाय, एक बात याद आ गयी।

पुरुष : (**शिकायत की नज़र से उसे देखता हुआ**) क्या बात ?

स्त्री : सुबह आधा केक किचन में खुला छोड़ गयी थी, स्कूल से आने पर वह दिखा ही नहीं। खा लिया होगा चूहों ने...चलो।

पुरुष : (**अपनी गम्भीरता में लौटकर**) बस यही सब सोच-सोचकर मन उदास हो जाता है।

स्त्री : अभी नहीं उतरा, मैं उतार देती हूँ। (**उसके मुँह से छिलका उतारती हुई**) मैं तो समझती हूँ कि तुम सोच-सोचकर उदास नहीं होते...उदास रहते हो, इसीलिए सोचते रहते हो।

पुरुष : और उदास किसलिए रहता हूँ ?...उतर गया होगा अब तो।

स्त्री : पता नहीं किसलिए उदास रहते हो।...हाँ, उतर गया।

पुरुष : मैं ऐसा कुछ चाहता हूँ...।

स्त्री : यही तो बात है। तुम वही कुछ चाहते हो जो तुम्हारे पास नहीं होता।

पुरुष : जैसे ?

स्त्री : जैसे क्या बताऊँ ?...जैसे देव चला गया है, तो उसी का ग़म तुम्हें नहीं छोड़ता।

पुरुष : **(हल्की उसाँस के साथ)** शायद।

स्त्री : तुम अपने को अलग कर ही नहीं पाते कभी।

पुरुष : किससे ?

स्त्री : लोगों से...चीज़ों से...जिन-जिन से तुम्हारा मन जुड़ा है, उन सब से।

पुरुष : **(वैसे ही उसाँस के साथ)** शायद।

स्त्री : **(सहसा व्यस्त होकर)** मैं एक मिनट किचन में देख आऊँ, कहीं कुछ और तो खुला नहीं छोड़ आयी। अभी आयी एक मिनट में।

चली जाती है। पुरुष उठकर टहलता हुआ खिड़की के पास आ जाता है। स्त्री उत्साहित भाव से लौटकर आती है।

स्त्री : तुमने देखा है बिल्ली के बच्चे कितने बड़े-बड़े हो गये हैं ?

पुरुष : **(उसकी तरफ़ मुड़कर)** तुम उस वक़्त सूरत जाने की जो बात कह रही थीं...

स्त्री : थोड़े दिनों में देखना लोग हमसे माँगने आने लगेंगे।

पुरुष : ...मैं सोचता हूँ कि...

स्त्री : हाँ, चले जाओ तुम्हारा मन हो तो।

पुरुष : मैं इसलिए कह रहा था कि हो सकता है कुछ दिन समुन्दर के किनारे घूमने से ही...।

स्त्री : मैंने अभी कहा था...यहाँ घूम आने के लिए...तो गये ही नहीं।

पुरुष : मैं बात कर रहा था...

स्त्री : पता नहीं ऐसा क्या लगता है तुम्हें समुन्दर के किनारे घूमने में ? मुझे तो ज़रा अच्छा नहीं लगता।... खिड़की से हट जाओ, ठंड खा जाओगे।

पुरुष : मुझे बहुत पसन्द है समुन्दर के किनारे घूमना। **(खिड़की से हटकर आता हुआ)** कितना अच्छा लगता है जब ऊँची-ऊँची लहरें किनारे से टकराती हैं... छपाक्! ...छपाक्! ...छपाक्!

स्त्री : वहीं सूरत में ही न...मेरे सब गर्म कपड़े कीड़ों ने खा लिये थे।

पुरुष : वह तो इसलिए खा लिए थे कि...कैसे आधी-आधी रात तक हम वहाँ टहलते रहते थे!

स्त्री : किसलिए खा लिये थे ?...बताओ न !

पुरुष : आज अगर हम वहाँ होते, तो...।

स्त्री : तुम्हारा मन हमेशा उन चीज़ों के लिए भटकता है जो तुमसे दूर हैं। पास होने पर चाहे तुम उन्हें देखो भी नहीं...पर उनका सेंक तुम्हें पहुँचता रहना चाहिए।

दरवाज़े के पास जाकर पुरुष का ध्यान बाहर की तरफ़ चला जाता है। वह पल-भर उधर देखता रहता है।

पुरुष : उनमें से एक बहुत अच्छा है।

स्त्री : किन में से ?

पुरुष : बिल्ली के बच्चों में से। वह जिसके सफ़ेद चित्तियाँ हैं। वह तुम किसी को मत देना।

स्त्री : मुझे तो दूसरा पसन्द है। वह जो...

पुरुष : (**उधर से हटकर जाता हुआ**) मैं कहना चाहता था कि क्यों न महीने-भर का प्रोग्राम बनाकर हम दोनों सूरत चलें ?

स्त्री : (**विभोर होकर**) दोनों ?...सच कह रहे हो ?... (**एकाएक सतह पर आकर**) स्कूल में इन दिनों बच्चों के टैस्ट चल रहे हैं...महीने-भर की छुट्टी मुझे कौन देगा ?

पुरुष : (**समस्या का वजन महसूस करता हुआ**)...हूं !

उंगलियाँ चटकाता हुआ पल-भर गम्भीर भाव से सोचता रहता है। फिर जैसे हल सूझ जाने से :

तुम्हारी छुट्टियाँ आ रही हैं न बीस दिन की ? उन्हीं दिनों बीस दिन का प्रोग्राम बनाकर चलें।

स्त्री : उन दिनों ?...(**पल भर सोचती रहकर कि उन दिनों क्यों नहीं जाया जा सकता**) पर उन दिनों कुछ है न ?

पुरुष : क्या है ?

स्त्री : कुछ है...पता नहीं क्या...नहीं है ?

पुरुष : पता नहीं...जहाँ तक मेरा ख्याल है...

स्त्री : कुछ तो है...याद नहीं आ रहा...अभी आ जाएगा याद...

पुरुष : खैर, जब तक याद नहीं आता, तब तक...

स्त्री : (**चमककर**) आ गया याद।

पुरुष : (**निराश स्वर में**) आ गया ?...तब तो...

स्त्री : वह मीटिंग है न उन दिनों ?

पुरुष : मीटिंग ?

स्त्री : तुम्हारी ही तो है मीटिंग...तुम बता रहे थे...पिछले हफ़्ते...जब मैंने तुमसे कहा था...

पुरुष : क्या ?

स्त्री : ...कि हम दोनों साथ-साथ चलें छुट्टियों में...सूरत !

पुरुष : (**मुरझाकर**) हाँ हाँ हाँ...वह तो है...वह मीटिंग ! ...अच्छा देखो। लैट अस सी।

टहलता हुआ खिड़की के पास चला जाता है।

स्त्री : तुम बहुत जल्दी उदास हो जाते हो...एक तो तुम सेंसिटिव बहुत हो।

पुरुष : (**बाहर देखता हुआ**) हाँ, यही तो ट्रेजेडी है...

स्त्री : सेंसिटिव मैं भी बहुत हूँ, पर मैं अपने को दबा जाती हूँ।

पुरुष : (**बिना रुके**)...सबसे बड़ी ट्रेजेडी ही यह है।

स्त्री : तुम्हारी तरह हर वक़्त सेंसिटिव बनी रहती न मैं भी...

पुरुष : अच्छा...देखो ! मीटिंग कैंसिल हो जाय, तभी कुछ हो सकता है।

स्त्री : (**रुआँसे स्पर्श के साथ**) कभी ज़रा भी ग़लती हो जाय मुझसे, तो एकदम झल्ला जाते हो।

पुरुष : (**थोड़ा तीखा पड़कर**) मैं झल्ला जाता हूँ ? तुम नहीं धौंस दिखाने लगतीं, सामने खड़ी होकर ?

स्त्री : वही तो मेरी सेंसिटिविटी होती है।

पुरुष : उस वक़्त मैं समझाने लगूँ, तो गरदन तान कर कहती हो, 'कोई और बात नहीं कर सकते तुम !'

स्त्री : वही तो। मैं अपनी सेंसिटिविटी को ज़रा भी उभर आने दूँ, तो बस...तुम्हारा ख़्याल है कैंसिल हो जाएगी मीटिंग ?

पुरुष : कैसे कह सकता हूँ ?—नहीं भी हो... हो भी जाय।

स्त्री : तुम खड़े रहो वहीं...कहा था ठण्ड खा जाओगे।

पुरुष : हो गयी कैंसिल...तो देखेंगे...।

खिड़की के पास से हट जाता है।

स्त्री : कैसा घर है ! खिड़कियाँ ही खिड़कियाँ हैं...रोशनदान एक नहीं है।

पुरुष : **(रुककर)** वह दरार भरवा दी है तुमने ?...बिस्तर के साथ की दीवार की ?

स्त्री : **(कुछ तल्ख होकर)** देखते ही हो...मेरे पास फ़ुरसत कहाँ रहती है दिन-भर ?

पुरुष : **(धीमे बड़बड़ाने के स्वर में)** चूहे सारी-सारी रात परेशान करते हैं। बिल्ली पाली थी इसलिए कि...

स्त्री : तुमने पाली थी ? तुम तो कहते थे कि...मैं उसे किचन और कमरों में घुसने भी देती हूँ ?

पुरुष : क्या कहता था मैं ?...आदमी इतना भी न चाहे कि उसे रात को ठीक से नींद आ जाया करे !

स्त्री : वह तो तुम अपने को बैलेंस कर पाओ, तब न !

पुरुष : **(वितृष्णा के स्वर में)** एक परेशानी हो तो आदमी बात करे।

स्त्री : तुम बैलेंस कर ही नहीं पाते अपने को कभी।

पुरुष : **(उसाँस के साथ)** हाँ...यही तो दिक़्क़त है।

स्त्री : जब पता है तुम्हें, तो करते क्यों नहीं हो कुछ इसके लिए ?

पुरुष : **(बड़बड़ाने के स्वर में)** करता क्यों नहीं हूँ...इतना आसान है जैसे करना...!

स्त्री : आदमी चाहे तो ज़रूर कर सकता है...कुछ-न-कुछ... हाँ, चाहे तो...!

पुरुष पल-भर सीधी नज़र से उसे देखता

रहता है। फिर आँखें हटाकर परास्त भाव से हाथ जेबों में डाल लेता है।

पुरुष : कुछ-न-कुछ तो होगा ही...कभी हो।

अब स्त्री पल-भर उसे देखती रहती है। फिर उसके नजदीक आ जाती है।

स्त्री : उस आदमी के प्रोमोशन का अब बिलकुल कोई चांस नहीं ?

पुरुष : नहीं।

स्त्री उसके पास से हटने लगती है, तो :

अब अगले साल ही हो तो हो।

स्त्री : **(रुककर)** अगले साल तक जाने... पता नहीं क्यों तुम दफ़्तर के काम को भी इतना इमोशनली लेते हो ?

पुरुष : मैं नहीं लेता...लेना पड़ता है मुझे ! ...न पाला होता यह सब झंझट सिर पर...।

स्त्री : तो किसने कहा था पालने को ? अच्छा था...न घर बसाते...न नौकरी करते।

पुरुष निढाल-सा आराम-कुर्सी पर बैठ जाता है।

पुरुष : जब अकेले थे, तो उस ज़िन्दगी से ऊबे हुए थे।

स्त्री : **(चुभते स्वर में)** और अब ऊबे हुए हो इस ज़िन्दगी से !

पुरुष : मैं तो समझता हूँ कि हर आदमी की अपनी अलग ज़िन्दगी होनी चाहिए...।

स्त्री : **(उसी स्वर में)** बिना घर-बार के ?

पुरुष : **(स्वर को लटकाता हुआ)** नहीं...घर-बार भी हो... आदमी की अलग ज़िन्दगी भी हो।

स्त्री : कैसे ?

पुरुष : (उसाँस के साथ) यही तो पता नहीं।
स्त्री : तो कुछ सोचो न इसके लिए...सोचते क्यों नहीं हो?
पुरुष : लैट अस सी।
स्त्री : लैट अस सी! लैट अस सी से क्या होता है?
पुरुष : देखें कल से। दफ़्तर में ही इतना काम पड़ा है! उसी में मन लगाने लगूं, तो और कुछ सोचने की फ़ुरसत नहीं रहेगी। हो सकता है उसी में मन खप जाय और...अच्छा देखो।

हल्की जम्हाई लेता है।

स्त्री : नींद आ रही है?

सामने बिस्तर पर बैठ जाती है।

पुरुष : नहीं...हालाँकि रात को ठीक से सोया नहीं था। तुम्हें आ रही हो, तो तुम सो जाओ।
स्त्री : मुझे तो खाना खाते ही नींद आने लगती है...मगर सो कैसे जाऊँ मैं?
पुरुष : क्यों?
स्त्री : तुम बात जो कर रहे हो। शायद कुछ तय हो जाय।
पुरुष : क्या तय हो जाय?
स्त्री : कुछ भी।
पुरुष : पहले मन था सिनेमा देखने चलते।
स्त्री : वह तो कल भी मन था तुम्हारा। परसों भी था।
पुरुष : फिर सोचा कि नहीं...पहले घर से जाओ...फिर लौटकर आओ...
स्त्री : कोई अच्छी फ़िल्म है ही नहीं।
पुरुष : ...बोरियत ही होगी।
स्त्री : सच कितनी बोर फ़िल्में आने लगी हैं आजकल! पर वह फ़िल्म ज़रूर देखेंगे...साऊंड ऑफ़ म्यूज़िक।
पुरुष : कहाँ लगी है?

स्त्री : बहुत ही बढ़िया है वह...सालहा-साल याद रहने वाली।

पुरुह : तुमने कब देखी है ?

स्त्री : अभी आयी नहीं। मैंने कहीं पढ़ा था उसके बारे में।

पुरुष : मैंने आज उसके लिए सोचा था...

स्त्री : कहाँ पढ़ा था, याद ही नहीं आ रहा।

पुरुष : वह जो है स्वी...क्या नाम है उसका...आई' ल टेक स्वीडन।

स्त्री : पता नहीं कैसी है ? बोर ही होगी।

पुरुष : (**जम्हाई लेकर**) शायद कुछ देर मन बहल जाता।

स्त्री : तुम्हें मफ़लर दे दूं ?...मेरा तो मन और उदास हो जाता है फ़िल्म देखकर। तुम्हारा नहीं होता ?

पुरुष : नहीं, मफ़लर नहीं चाहिए...पहले मैं बहुत फ़िल्में देखता था।

स्त्री : मैं भी। पर पहले देखकर मन उदास नहीं होता था।

पुरुष : वह बात फिर आयी थी दिमाग़ में... फिर ग़ायब हो गयी।

पल-भर दोनों ख़ामोश रहते हैं।

स्त्री : ...तो फिर उसे ही रखना है अपने पास ?

पुरुष : (**कुछ और सोचता हुआ**) किसे ?

स्त्री : जिसके सफ़ेद चित्तियाँ हैं ?

पुरुष : (**थोड़ा आगे को झुककर**)...ऐसा नहीं लगता कि जिन-जिन चीज़ों में ख़ुशी मिला करती थी...पहले... अब उनमें से किसी चीज़ में ख़ुशी रह ही नहीं गयी ?

स्त्री : मैंने तो सोच लिया है।

पुरुष : क्या ?

स्त्री : कि यह सब ऐसे ही हैं, इसलिए सालहा-साल इसी तरह काट देने हैं।

स्वर कुछ रुआँसा हो जाता है।

पुरुष : लगता है हर चीज़ सिर्फ़ दोहराई जा रही है। जो जी चुके हैं, उसी को फिर से जी रहे हैं।...(**सहसा स्त्री के भाव के प्रति सचेत होकर**) इसमें रोने की क्या बात है ?

स्त्री : मैं रो कहाँ रही हूँ ? मैंने तय कर लिया है कि इसकी कभी शिकायत ही नहीं करनी है।

पुरुष : देखो...आगे चलकर शायद...

स्त्री : मैंने सचमुच तय कर लिया है।

उँगली से आँसू पोंछ लेती है।

पुरुष : रो रही हो और कहती हो रो नहीं रही...अरे, तो ज़िन्दगी कटती ही इस तरह से है ! पर हम कहते... हैं...फिर भी...(**सोचता हुआ**) कोई ऐसी चीज़ ज़िन्दगी में होनी ज़रूर चाहिए जो...

स्त्री पल्ले से मुँह साफ़ करके स्वस्थ हो जाती है।

स्त्री : क्या कह रहे थे तुम ?

पुरुष : ...जो आदमी रोज़-रोज़ एक नया उत्साह दे और... जो है, इसमें कुछ नहीं है।

स्त्री : मैंने तो तुमसे उस दिन ही कहा था।

पुरुष : आदमी रोज़-रोज़ उसी तरह जीता है, उसी तरह खाता-पीता है, उसी तरह बकता-झकता है, उसी तरह उदास होता है। कोई चीज़ हो जो...

स्त्री : मैंने तो यह सोचना भी छोड़ दिया है।

पुरुष : ...जो आदमी को उलझाये रखे...उसे महसूस हो कि हाँ, यह कर लिया आज !

स्त्री : दिन-भर स्कूल में पढ़ाओ। फिर बाज़ार जाकर सब्ज़ियाँ लाओ। उठाकर लाते हुए बाहें टूट जाती हैं।

घर आकर खाना बनाओ। पर होता कुछ नहीं।

पुरुष : ख़ैर, तुम जो करती हो, उसका तो फिर भी कुछ अर्थ निकलता है...

स्त्री : बाई द वे निकल आता हो, तो पता नहीं। हम तो इसलिए किये जाते हैं कि करना होता है। ऐसे ही उम्र काट देंगे।

पुरुष कुर्सी से उठकर टहलने लगता है।

पुरुष : कोई भी चीज़ मन को उलझाती नहीं। उलझाती है, तो बस पाँच मिनट के लिए, दस मिनट के लिए, घण्टे-भर के लिए। नहीं, घण्टे भर के लिए कोई चीज़ मन को नहीं उलझाती...

स्त्री : रोज़ दो-दो घण्टे तो बात करते रहते हो, और कहते हो कि...

पुरुष : ...कोई चीज़ होल्ड नहीं करती। लगता है, कुछ होना था, नहीं हुआ। शायद कल होगा। पर वह कल होता ही नहीं। बात कुछ समझ में नहीं आती।

स्त्री : कल तो होता है...पर बात समझ में नहीं आती। कल तो अब आने वाला है। सोकर उठने तक आ जाएगा।

पुरुष : (**उसाँस के साथ**) यही तो दिक़्क़त है डार्लिंग, यही तो दिक़्क़त है।...फ़ाइलें पलट लो, चाय पी लो, बहस कर लो, किसी के ब्याह-शादी या मातम में चले जाओ, कोई पार्टी अटेंड कर लो...

स्त्री : वह मेहता साहब की पार्टी अच्छी थी। खाना बहुत अच्छा बनाया था उनके ख़ानसामा ने। ख़ानसामा बहुत अच्छा है उनके पास। उस दिन की पार्टी में मैं हँसी भी बहुत थी। बहुत दिनों के बाद उस तरह हँसी आयी थी। पता नहीं क्यों?

पुरुष : ...कुछ भी कर लो, ख़ालीपन ज्यों-का-त्यों बना रहता है ।

स्त्री : मैं तुमसे फिर कहती हूँ...तुम हो आओ वहाँ... सूरत !

पुरुष : ...एक मज़ाक-सा है जैसे...

स्त्री : मज़ाक किस बात का ? मैं समझी नहीं ।

पुरुष : या एक धोखा कह लो...

स्त्री : (अपने हाथ को देखती हुई) वह मिल जातीं न...तो दो दिन में ठीक हो जाता...

पुरुष : क्या ?

स्त्री : मरहम...मिल ही नहीं रही...

पुरुष : पहले आदमी सोचता है कि इसके अन्दर से कोई सार निकलेगा, निकलेगा...

स्त्री : बस ज़रा-सी लगानी होती थी...दिन में दो बार...

पुरुष : ...फिर सोचता है कि इसके अन्दर तो नहीं है, पर कहीं-न-कहीं ज़रूर होगा...

स्त्री : ...क्या नाम था उसका...याद ही नहीं...

पुरुष : ...उन चीज़ों में, उन लोगों में, जिन्हें वह नहीं जानता । पर जब उन्हें भी जान जाता है...

स्त्री : ...तुम्हें याद है वह वहीं ली थी हमने...जब वहाँ गये थे...सूरत ?

पुरुष : ...तो पता चलता है कि कहीं कुछ नहीं है...कहीं कुछ है ही नहीं ।

स्त्री : और क्या ? है ही नहीं ।

पुरुष : तो ऐसे में क्या करे आदमी ?

स्त्री : क्या करे ?...बस जीता जाय !...अगर इस बार गये न सूरत...

पुरुष : जीता जाय !...ओह !

स्त्री : ...तो याद से लेते आएँगे।

पुरुष : क्या ?

स्त्री : मरहम।...उससे ठीक हो जाता है...नहीं तो ये सफ़ेद चित्तियाँ...

पुरुष : **(उसाँस के साथ)** मुझे नहीं लगता कभी कुछ भी ठीक हो सकता है।

जेबों में हाथ डाले इधर-उधर देखने लगता है।

स्त्री : कुछ चाहिए तुम्हें ?

पुरुष : हाँ...वह था न क्या...?

स्त्री : मेरे पास ?

पुरुष : हाँ...नहीं...पता नहीं...पता नहीं क्या आया था दिमाग़ में...

स्त्री : तुम्हें दवाई दे दूँ, नहीं तो सारी रात फिर खाँसते रहोगे।

जाकर अलमारी से दवाई की शीशी और चम्मच ले आती है।

पुरुष : मेरे साथ हमेशा यही होता है।

स्त्री : **(दवाई चम्मच में डालकर उसे देती हुई)** क्या ?

पुरुष : सोचने से पहले बात दिमाग़ में आती है, और सोचने-सोचने तक...

दवाई खाकर सिर हिलाता है और उसे चम्मच लौटा देता है।

स्त्री : ज़रा वक़्त देख लेते।

पुरुष : क्यों ?

स्त्री : ऐसे ही कहा है।

पुरुष : मेरा ख़्याल है ख़बरें ख़त्म हो गयी होंगी।

स्त्री : कहीं और से आ रही हों शायद...तुम उस दिन क्या कह रहे थे ?

पुरुष : किस दिन ?

स्त्री : उस दिन जिस दिन...क्या बात हो रही थी उस दिन ?...तुम कुछ कह रहे थे...पासपोर्ट के बारे में।

पुरुष : मैं कह रहा था ? क्या कह रहा था ?

स्त्री : **(अलमारी की तरफ़ जाती हुई)** कुछ कह रहे थे... **(अलमारी खोलती हुई)**...कि जाने क्या हो सकता है... **(शीशी और चम्मच रखकर अलमारी बन्द करती हुई)**...अगर पासपोर्ट बन जाय तो...! **(लौटकर उसकी तरफ़ आती हुई)** कितने दिन लग जाते हैं पासपोर्ट बनने में ?

पुरुष : **(जम्हाई लेकर)** लगता है थोड़ी देर में नींद आ जाएगी।

स्त्री : सच अगर आदमी कहीं विदेश ही चला जाय, तो...

पुरुष : विदेश क्यों चला जाय ? वहीं क्या रखा है ?...झीलें, समुन्दर, सड़कें, लोग, होटल, तफ़रीहगाहें, बार, बिल्डिगें...क्या है इन सब में ?

स्त्री : वह तो मेच्योर हो गये हो न...इसलिए लगता है।

पुरुष : क्या कहा —मेच्योर ?

स्त्री : और क्या ? मैं भी तो मेच्योर हो गयी हूँ।...पहले हम खुश रहते थे, आस-पास के लोग भी हमें खुश लगते थे। अब लगता है कि आसपास के लोग भी दुःखी हैं, हम भी दुःखी हैं। और मेच्योरिटी क्या होती है ?

पुरुष : **(व्यस्त भाव से)** सोचता हूँ सुबह जल्दी उठ जाऊँ। दफ़्तर जाने से पहले कुछ काग़ज़ात देखने हैं।

स्त्री : जिन-जिन लोगों के लिए कहा करते हो कि वे मेच्योर हैं, बताओ उनमें कौन दुःखी नहीं है ?

पुरुष : ...काम बहुत पिछड़ता जा रहा है। **(पल-भर के लिए रुककर बाहर देखता हुआ)** तुम समझती हो उन्हें यहाँ अन्दर आने देना चाहिए ?

स्त्री : मुझे तो लगता है यही सब कुछ है।

पुरुष : क्या ?

स्त्री : यही...दुःखी रहना, सोचते रहना। इसके अगल-बगल, आज़ू-बाज़ू, और कुछ नहीं है...तुम किनके अन्दर आने की बात कह रहे थे ?

पुरुष : बिल्ली के बच्चों के। मगर डर यही है कि कहीं...

स्त्री : वे नहीं आएँगे अन्दर...देख लेना...अब तो आदत हो गयी है उन्हें...वहीं बाहर रहने की...

पुरुष : अभी सात-सात दिन के तो हुए नहीं, और...

स्त्री : सात दिन थोड़े होते हैं ?...बूढ़ा हो जाता है आदमी...सात दिन में...देखते नहीं, मेरे कितने बाल सफ़ेद हो गये हैं ?

पुरुष : बाल सफ़ेद हो गए हैं ?...तुम्हारे ?

स्त्री : इसी तरह तो हुए है...सोच-सोचकर...सात साल में। सात साल और सात दिन में कितना फ़र्क है... कुछ भी नहीं।

पुरुष : अच्छा बताओ...रात को खिड़की का क्या करना है ?

स्त्री : क्या करना है ?

पुरुष : इसे खुली रखना है या...?

स्त्री : जैसे कहो। खुली रख लेंगे। बन्द कर देंगे।

पुरुष : बन्द करने से गर्मी लगेगी।

स्त्री : खुली रखने से ठण्ड लगेगी।

पुरुष : तो ?

स्त्री : तो कुछ नहीं।...तुमसे कहा था अपने लिए नयी चप्पल खरीद लेते।

पुरुष : चप्पल ? (**उसाँस के साथ**) हाँ, चप्पल ख़रीद लेंगे।

स्त्री : कुछ और भी तो ख़रीदना था तुम्हें।

पुरुष : क्या ?

स्त्री : (**अपने हाथ पर खुजलाती हुई**) याद नहीं...कुछ ख़रीदना था।

पुरुष : तुम फिर खुजला रही हो।

स्त्री : क्या करूँ ?...वह तो है नहीं...

पुरुष : क्या ?

स्त्री : मरहम।

पुरुष : हाँ, और मिलेगी भी नहीं...(**बिस्तर पर बैठता हुआ निढाल स्वर में**) हम तो थक गये !...तुम नहीं थकीं ?

स्त्री : पता नहीं...मुझे तो पता ही नहीं चलता।

पुरुष : (**लेटने के लिए पाँव पसारता हुआ बीच में रुककर**) हाँ...याद आ गयी वह बात...

स्त्री : क्या ?

पुरुष : कल सोने से पहले कुछ कहा था तुमने।

स्त्री : क्या कहा था ?

पुरुष : कुछ कहा था...कि आज तुम्हें याद दिला दूँ।

स्त्री : पता नहीं क्या कहा था ?...अब कल याद दिला देना...अगर याद आ जाय तो।

पुरुष : (**जम्हाई लेकर**) कितनी बातें होती हैं !

स्त्री : कौन-सी?

पुरुष : जो याद रखनी होती हैं।

तकिये पर सिर रख लेता है।

स्त्री : बत्ती बुझा दूँ ?

पुरुष : जैसे तुम चाहो।

स्त्री : मैं चाहूँ ?...तुम्हीं को रोशनी में नींद नहीं आती।

पुरुष : वह तो अंधेरे में भी नहीं आती।

करवट बदल लेता है।

स्त्री : अब ठीक से सो जाना।

पुरुष मुँह में कुछ बोलता है जो सुनायी नहीं देता।

और हाँ...एक चीज़ की याद दिला दोगे...कल ?

पुरुष : (**खीझे हुए स्वर में**) किस चीज़ की ?

स्त्री : दरार भरवाने की।

पुरुष : देखो...याद रहा तो।

स्त्री : तो अब ठीक से सो जाना।

पुरुष कोई उत्तर नहीं देता। वह पल-भर प्रतीक्षा करती है, फिर जाकर बत्ती बुझा देती है।

नहीं कल फिर मुझसे कहोगे...

पुरुष फिर भी कोई उत्तर नहीं देता।

(**पास आकर उस पर झुकती हुई**) पता नहीं क्यों तुम इतना सोचते हो ?...तुम्हारी तरह मैं भी तो हूँ।

पुरुष सिर्फ 'हूं' कहकर बिस्तर पर थोड़ा एक तरफ़ को सरक जाता है।

उसी तरह जीती हूँ, मगर हर वक़्त सोचती नहीं रहती।

पुरुष फिर 'हूं' कहकर थोड़ा और सरक जाता है।

(**थोड़ा और झुककर**) तुम्हारा मन हो, तो चाहे सचमुच चले जाना वहाँ...सूरत !

पुरुष : (**कुछ अधीर स्वर में**) तुम्हें सोना नहीं है ?

स्त्री : (**उसी तरह झुके-झुके एक हाथ से रजाई खोलती हुई**) अच्छा...कल फिर बात करेंगे...देखो शायद...।

रजाई पूरी खुलने तक पुरुष करवट बदलकर मुँह उसकी तरफ़ कर लेता है। अंधेरा गहरा हो जाता है और बाहर से बिल्ली के बच्चों की हल्की 'म्याऊँ-म्याऊँ' सुनायी देने लगती है।

दूसरा बीज-नाटक

हं: !

पात्र

पपा
ममा
जमशेद
...और बीतता समय ।

बम्बई में 'माउंट मेरी हिल' के एक बँगले की ऊपरी मंज़िल। पुराने ढंग के साज-सामान से लदा एक बड़ा-सा कमरा। टूटी हुई डाइनिंग टेबल के इर्द-गिर्द अलग-अलग तरह की तीन कुर्सियाँ। ड्रेसिंग टेबल पर दवाई की शीशियाँ, जूठी प्यालियाँ और हर तरह की चीजें। साथ-साथ लगे तीनों ऊँचे कबर्ड इस तरह से बन्द जैसे एक मुद्दत से उन्हें खोला ही न गया हो। कमरे के बीचोंबीच खिड़की से सटे एक बड़े पलँग पर चादर ओढ़े पपा। पास की कुर्सी पर आँखें मूँदे ममा। खिड़की के बाहर सरसराते पेड़। दूर समुद्र की लहरों की हल्की आवाज़।

पपा करवट बदलने की कोशिश में हल्के से कराहता है।

ममा : (नींद के झोंके से आँखें खोलकर) क्या बात है, पपा?... क्या बात है, पपा डार्लिंग?

पपा आँखें झपकता हुआ चुपचाप सामने देखता रहता है।

(उसाँस के साथ) मेरा ख्याल है...मुझे वह ले ही जाना चाहिए।

पपा : (हल्के से सिर उसकी तरफ़ मोड़कर) आज क्या है?

ममा : आज?...कुछ भी तो नहीं है आज।

पपा : पन्द्रह नवम्बर?

ममा : सोलह। पन्द्रह कल थी। तुम्हें तो कल और आज के फ़र्क का पता ही नहीं चलता।

पपा : पिछले साल...(फिर करवट बदलने की कोशिश में

कराहकर) पन्द्रह नवम्बर को...
(कोशिश से हारकर) मैं चल-फिर सकता था।

ममा : **(कुर्सी से उठती हुई)** मैं जमशेद से कह दूं तुम्हारे लिए चाय ले आय।

पपा : **(हल्की मुस्कराहट के साथ)** तुमने हाथ पकड़कर मुझे पूरा कमरा पार कराया था !... तुम्हें याद है ?

ममा : **(दरवाज़े के पास से)** जमशेद।.. पपा उठ गये हैं, इनके लिए चाय ले आओ।

पपा की तरफ़ लौट आती है।

पपा : नहीं याद ?

ममा : याद क्यों नहीं है ? मैं उस दिन तुम्हारा हाथ न पकड़े रहती, तो...।

पपा : सिर्फ़ साल-भर पहले की बात है। कितनी जल्दी बीता है यह साल ! **(पल-भर दर्द से आँखें मीचे रहने के बाद)** तुम्हें नहीं लगता ?

ममा : **(फिर कुर्सी पर बैठती हुई)** कुछ देर और सोये रहते, तो अच्छा था।

पपा : नहीं लगता तुम्हें ?

ममा : यह डॉक्टर बैनर्जी भी डॉक्टर भाटिया जैसा ही है। कहता था नयी दवाई से अच्छी नींद आ जाया करेगी। मगर तुम्हारी नींद का तो अब भी वही हाल है जो...।

पपा : उस दिन की वह बात भी याद है तुम्हें ?

आँखों में हल्की चमक भर जाती है।

ममा : किस दिन की ?

पपा : पिछले साल...पन्द्रह नवम्बर की ?

ममा : **(दिखावटी गुस्से के साथ)** पपा।...अब देखो तुम...।

पपा सूखी-सी हँसी हँसता है जो उसके गले के अन्दर ही घुटी रह जाती है।

पपा : उस दिन क्या कहा था तुमने मुझे ! ...गुण्डा...गुण्डा कहा था न ?

ममा : गुण्डा नहीं, लुच्चा...और वह मैं अब भी कहती हूँ। तुम्हारा आज भी बस चले, तो तुम...

पपा अपनी हँसी के बीच दर्द के मारे 'ओह, ओह' कर उठता है।

पपा : यह हरामज़ादा पलँग ! यह मेरी जान लेकर रहेगा।

ममा : ...आज भी बाज़ न आओ।

पपा : मेरा जनाज़ा निकलेगा इस पर। देख लेना तुम।

ममा : इतनी तबियत ख़राब थी तुम्हारी उस दिन, फिर भी तुमने...**(सिर हिलाकर)** हद ही कर दी थी।

पपा : सारे स्प्रिंग ढीले हो गये हैं इसके। ज़रा-सा हिलते ही बदन के सब फफोले दुख जाते हैं। फिर भी...।

ममा : इस तरह काटा था मेरे होंठ पर कि...।

अपने निचले होंठ को ज़बान से इस तरह सहलाती है जैसे उस पर अभी-अभी काटा गया हो। पपा की आँखों में फिर चमक भर जाती है।

पपा : वह तो मैंने छोड़ दिया था तुम्हें, नहीं तो...

फिर दर्द से कराह उठता है।

ममा : **(दरवाज़े की तरफ़ देखकर)** पता नहीं जमशेद उधर है भी या नहीं।

पपा : **(दर्द पर काबू पाकर)**...नहीं तो उस दिन तो मैंने सोचा था कि...।

ममा : कितनी बार कहती हूँ इससे कि बाहर जाया करे, तो पाँच बजे तक लौट आया कर। पर यहाँ जब और कोई मेरी बात नहीं सुनता, तो वही क्यों सुनेगा ?

पपा : **(करवट बदलने की कोशिश में)** ओह !

ममा : मुझे कोई तरीका ही नहीं सूझता जिससे ... (**पपा को दर्द से गुमसुम देखकर**) पपा !

पपा शिकायत-भरी नज़र से उसे देखता चुप रहता है ।

(**दुलारने के स्वर में**) देखो अगर रिशी आ गया आज न, तो मैं ज़रूर ले आऊँगी तुम्हारे लिए जाकर...सर्जिकल बेड ।

पपा मुंह में कुछ बड़बड़ाकर आँखें झपकने लगता है ।

एक तो इतना पैसा माँगते हैं ये लोग ज़रा-सी चीज़ का ।

पपा : (**भौंहें सिकोड़कर**) हं: !

ममा : सौ रुपया एडवांस...चालीस रुपया निकलवाकर लाने का ...और पचास रुपया पहले महीने का भाड़ा...कुल...

पपा : एक सौ नब्बे रुपया । दस कम दो सौ । तुम इतनी ही बार गिन चुकी हो ।

ममा : खैर, वह बेड आ जाय, तो तुम ढीले स्प्रिंगों से तो बच ही जाओगे और...।

पपा : इस गिनती से भी ।

ममा : पपा !

पपा : बचपन में यह गिनती मुझे उस तरह याद नहीं थी जिस तरह अब याद है । सौ जमा चालीस एक सौ चालीस । एक सौ चालीस जमा पचास...।

ममा : पपा !

पपा : मैं इसे उलटा भी गिन सकता हूँ । एक सौ नब्बे में से पचास कम करो, एक सौ चालीस । एक सौ चालीस में से चालीस कम करो...।

ममा : (**अधीर होकर**) पपा !

पपा : मुझे मज़ा आता है गिनने में । तुम्हें भी आता है । नहीं ?

ममा : हाँ, आता है मुझे भी । मेरे पास रखा है न सौ पचास

हज़ार...तुम्हारा दिया हुआ...जो मैं...। (बाहर [illegible] के ज़ीने से ऊपर आते क़दमों की आवाज़ सुनकर) [illegible] जमशेद अब आया है लौटकर।

पपा : (आँखें घुमाकर खिड़की से बाहर देखने की कोशिश [illegible] हुआ) यह डाक का वक़्त नहीं है ? [illegible] वक़्त नहीं आती ?

ममा : (उठती हुई) इसे बीड़ी पीने के लिए [illegible] चाहिएँ। इतना भी ख़्याल नहीं कि [illegible] ख़राब है और...।

बाहर चली जाती है। [illegible] इस तरह की आवाज़ें [illegible] क्लास-रूम से बाहर [illegible] बाहर चला गया हो।

पपा : (साँस भरकर) एक साँस छोटी। ([illegible] भरकर) एक साँस बड़ी।

'बड़ी' कहते-कहते [illegible] और वह [illegible] बैठ जाय, इसके लिए [illegible] बिलकुल [illegible] तकिये का [illegible] थोड़ा [illegible] ममा [illegible] नीचे [illegible]

ममा : (घबराकर [illegible]) [illegible] पपा ?...[illegible] ममा [illegible] [illegible]

पपा : डाक आयी है ?

ममा : मुझे कोई तरीका ही नहीं सूझता जिससे ... (**पपा को दर्द से गुमसुम देखकर**) पपा !

पपा शिकायत-भरी नज़र से उसे देखता चुप रहता है ।

(**दुलारने के स्वर में**) देखो अगर रिशी आ गया आज न, तो मैं ज़रूर ले आऊँगी तुम्हारे लिए जाकर...सर्जिकल बेड ।

पपा मुंह में कुछ बड़बड़ाकर आँखें झपकने लगता है ।

एक तो इतना पैसा माँगते हैं ये लोग ज़रा-सी चीज़ का ।

पपा : (**भौंहें सिकोड़कर**) हं: !

ममा : सौ रुपया एडवांस...चालीस रुपया निकलवाकर लाने का ...और पचास रुपया पहले महीने का भाड़ा...कुल...

पपा : एक सौ नब्बे रुपया । दस कम दो सौ । तुम इतनी ही बार गिन चुकी हो ।

ममा : खैर, वह बेड आ जाय, तो तुम ढीले स्प्रिंगों से तो बच ही जाओगे और...।

पपा : इस गिनती से भी ।

ममा : पपा !

पपा : बचपन में यह गिनती मुझे उस तरह याद नहीं थी जिस तरह अब याद है । सौ जमा चालीस एक सौ चालीस । एक सौ चालीस जमा पचास...।

ममा : पपा !

पपा : मैं इसे उलटा भी गिन सकता हूँ । एक सौ नब्बे में से पचास कम करो, एक सौ चालीस । एक सौ चालीस में से चालीस कम करो...।

ममा : (**अधीर होकर**) पपा !

पपा : मुझे मज़ा आता है गिनने में । तुम्हें भी आता है । नहीं ?

ममा : हाँ, आता है मुझे भी । मेरे पास रखा है न सौ पचास

हज़ार...तुम्हारा दिया हुआ...जो मैं...। **(बाहर लकड़ी के ज़ीने से ऊपर आते क़दमों की आवाज़ सुनकर)** देखो, जमशेद अब आया है लौटकर।

पपा : **(आँखें घुमाकर खिड़की से बाहर देखने की कोशिश करता हुआ)** यह डाक का वक़्त नहीं है? शाम की डाक इसी वक़्त नहीं आती?

ममा : **(उठती हुई)** इसे बीड़ी पीने के लिए भी रोज़ दो घंटे चाहिएँ। इतना भी ख़याल नहीं कि पपा की तबीयत इतनी ख़राब है और...।

बाहर चली जाती है। पपा मुंह से कुछ इस तरह की आवाज़ें पैदा करता है जैसे क्लास-रूम से मास्टर थोड़ी देर के लिए बाहर चला गया हो।

पपा : **(साँस भरकर)** एक साँस छोटी। **(फिर दूसरा साँस भरकर)** एक साँस बड़ी।

'बड़ी' कहते-कहते शरीर दुख जाता है और वह 'ओह, ओह' कर उठता है। दर्द बैठ जाय, इसके लिए पल-भर अपने को बिल्कुल सीधा किए रहता है। फिर तकिये का सहारा लेकर आहिस्ता से थोड़ा ऊँचा उठने की कोशिश करता है। ममा लौट आती है। बाहर ज़ीने में कोई नीचे उतर जाता है।

ममा : **(घबराकर उसकी तरफ़ आती हुई)** यह क्या हो रहा है, पपा?...नीचे लुढ़कने का इरादा है क्या?

पपा उसे आते देखकर अपने को जहाँ-का-तहाँ रोक लेता है।

पपा : डाक आयी है?

ममा : (**बड़बड़ाती हुई**) इसीलिए मैं इस आदमी को एक मिनट के लिए भी अकेला छोड़कर नहीं जाती। अगर कहीं मुझे घंटा-दो-घंटे के लिए जाना पड़ जाय घर से, तो पता नहीं यह क्या कहर ढा दे उस बीच।

सहारा देकर उसे फिर पहले की तरह लिटा देती है।

पपा : किसकी चिट्ठी है ?

ममा : चिट्ठी है तुम्हारे उसकी...जो तुम्हें रोज़ चिट्ठी लिखता है।

पपा : हंः !

आँखें दूसरी तरफ़ हटाकर जैसे किसी अदृश्य व्यक्ति से आँखों से बात करता है।

ममा : हंः ! ...हद होती है लापरवाही की भी।

पपा : हंः !

ममा : महीने भर से किसी ने ख़बर भी नहीं पूछी ! कहने को सगा बेटा है, सगी बेटियाँ हैं।

पपा : (**जैसे अन्दर का गुबार निकालता हुआ**) अ-अ-अ-अ-अ-अ-अ-अ-अ,...ह-ह-ह-ह-ह-ह-ह-ह-ह।

ममा हल्की त्योरी के साथ उसकी तरफ़ देखकर ड्रेसिंग टेबल के पास चली जाती है, और वहाँ से जूठी प्यालियाँ उठाने लगती है।

ममा : मैं खुद जा रही हूँ चाय बनाने। जमशेद अब तक भी लौटकर नहीं आया। ऐसा हरामख़ोर आदमी है यह...।

पपा : हुश्-हुश्-हुश्-हुश्-हुश्-हुश्-हुश्-हुश्-हुश्।

ममा : सुबह की जूठी प्यालियाँ अब तक नहीं धोयीं इसने। जैसा मालिक है इस घर का, वैसा ही नौकर भी है। इसके तो

सब काम मुझे करने ही होते हैं, उसके भी सब काम मुझी को करने पड़ते हैं।

पपा : फुः-फुः-फूः-फूः-फुः-फुः-फूः-फूः।

ममा बड़बड़ाती हुई प्यालियाँ लिए बाहर को चल देती है। पलँग के पास से गुज़रते हुए प्यालियाँ उसके हाथ से गिरने को हो जाती हैं और उन्हें संभालने की कोशिश में एक चिट्ठी उसकी काँछ से नीचे फ़र्श पर गिर पड़ती है। वह पैर से चिट्ठी को पलँग के नीचे सरकाकर जाते-जाते पपा को देख लेती है कि उसकी नज़र गिरती चिट्ठी पर पड़ तो नहीं गयी। पपा उसके दरवाज़े से बाहर होने तक आँखें सामने कबर्ड पर स्थिर किये रहता है। फिर होंठ गोल करके मुँह से 'हूऽ-हूऽ-हूऽ' आवाज़ निकालता है।

पपा : (साँस भरकर) एक साँस छोटी। एक साँस...

पर 'बड़ी' कहने से पहले ही उसका शरीर दुख जाता है। दर्द पर काबू पाने के बाद वह पल-भर आहट लेने के लिए रुकता है, फिर जिस तरफ़ चिट्ठी पड़ी है, उस तरफ़ को करवट बदलने की कोशिश करने लगता है। इस कोशिश में उसकी पट्टियों से बँधी दुबली बाहें चादर से बाहर निकल आती हैं। सीधे से करवट नहीं बदली जाती, तो वह हाथों से पहले एक और फिर दूसरी टाँग का रूख़ बदलता है। फिर बाँह लम्बी करके किसी तरह

नीचे चिट्ठी तक हाथ पहुँचाने की कोशिश करता है। उसका हाथ फ़र्श तक पहुँच तो जाता है, पर इस बीच शरीर इतना दुख जाता है कि वह उसी स्थिति में निढाल होकर 'ओह, ओह' करने लगता है। बाहर ज़ीने से फिर ऊपर आते क़दमों की आहट सुनायी देती है—इस बार पहले से भारी। जमशेद अपने भारी जूतों से लकड़ी के फ़र्श पर आवाज़ करता कमरे के अन्दर आ जाता है।

जमशेद : वह नहीं मिली जी...

पपा : ओह !

जमशेद : ...गरम पानी की बोतल। वे कहते हैं उनके यहाँ भी नहीं है।

पपा : ओह ! ओह !

ममा तमतमायी हुई बाहर से आती है।

ममा : **(दहलीज़ लाँघते ही जमशेद से)** कल परसों से एक घंटा लेट...आज एक घंटा लेट कल से...इसका मतलब है कि दो-तीन दिन में तेरी सूरत ही दिखायी देनी बन्द हो जाएगी। अगर इतना ख़्याल नहीं तुझे पपा के आराम का तो... **(अचानक पपा को बिस्तर पर औंधा देखकर)** पपा !... यह क्या कर रहे हो तुम ?

पपा : **(अपना लटका हुआ हाथ ऊपर उठाता हुआ)** आराम।

ममा : **(पास जाकर उसे सीधा लिटाती हुई)** तुम कभी चैन नहीं लेने दोगे मुझे पल-भर भी। एक मिनट के लिए अकेला छोड़कर गयी थी और...**(जमशेद से)** तुमसे इतना भी नहीं हुआ कि पास आकर पपा को सीधा लिटा ही देता ? **(अपने से)** बस सीधे से उलटा होना

आता है इस आदमी को...उलटे से सीधा होना नहीं आता। **(पपा की बाँहें पहले की तरह चादर से ढकती हुई जमशेद से)** तू अब भी खड़ा क्यों है ? क्या अभी पपा की चाय का वक़्त नहीं हुआ ?

जमशेद : वह नहीं मिली।

ममा : पानी मैंने स्टोव पर रख दिया है। अभी उबल जाता है, तो...क्या नहीं मिली ?

जमशेद : गरम पानी की बोतल। पावरी साहब का कहना है कि...।

ममा : मुझे पता है उनका क्या कहना है। दो दिन यहाँ रहने से सूराख़ नहीं पड़ जाएँगे उनकी बोतल में ?...चीनी नीचे के मरतबान में है, प्लास्टिक वाले में...मैं गुलशन से कहूँगी, वह मुझे नयी बोतल ला देगी ख़रीदकर।...तुम चीनी छोटी कटोरी में निकालना और वहीं ट्रे में रखकर ले आना। कुल इतनी-सी ही बची है और अभी चौदह दिन निकालने हैं।...मुझसे कितनी-कितनी चीज़ें माँगकर ले जाते हैं और आज मैंने एक चीज़ मँगा भेजी तो... **(अचानक गुस्से में भरकर जमशेद से)** तू अब जाता क्यों नहीं है ? मैंने कहा नहीं है तुझसे चाय लाने के लिए ?

जमशेद पल-भर चुप खड़ा सीधी नजर से उसे देखता रहता है। फिर जैसे ज़बान पर आए शब्दों को रोककर बाहर चला जाता है।

कैसे देखता है मुझे।...**(पपा से)** तुमने देखा है यह कैसे देखता है मुझे ?

पपा : कम-से-कम देखता तो है तुम्हें। मुझे तो देखता ही नहीं।

ममा : अगर जहाँगीर होता न यहाँ, और इसे इस तरह देखते देख लेता...।

पपा : चिट्ठी किसकी है ? जहाँगीर की ?

ममा : **(सतर्क)** कौन-सी चिट्ठी ?

पपा : तुमने पढ़ी नहीं ?

ममा : **(हठ के साथ)** कौन-सी चिट्ठी ?

पपा उसकी तरफ़ देखकर वही गले में घुटी हुई हँसी हँसता है।

पपा : वही ..जो नहीं आयी।

ममा : तो तुम समझते हो कि...

पपा : उठा लो नीचे से। मैं नहीं देखूँगा।

ममा परास्त भाव से कुरसी पर बैठ जाती है।

ममा : वह चिट्ठी नहीं है।

पपा : जो भी है...पढ़ तो लो।

ममा : पढ़ ली है मैंने।

पपा : क्या लिखा है ?

ममा : **(सतर्क)** किसने ?

पपा : जहाँगीर ने।

ममा : वह जहाँगीर की चिट्ठी नहीं है।

पपा : वही बात लिखी होगी उसने...।

ममा : **(उत्तेजित)** मैंने कहा है न वह जहाँगीर की चिट्ठी नहीं है ?

पपा : ...कि पपा को वेल्फ़ेयर होम में भेज दो...यही लिखा होगा। फिर से।

ममा : **(क्रोध के साथ)** मैंने कहा है न तुमसे कि...?

पपा : हर बार यही लिखता है वह। पिछले छः महीने से हर चिट्ठी में उसने यही लिखा है।

ममा : देखो, पपा...।

पपा : पपा अब कूड़ा हो गया है। इसे डस्ट-बिन में फेंक देना चाहिए।

ममा : तुम्हें शरम नहीं आती, अपने बेटे के बारे में ऐसी बात कहते ?

पपा : मुझे शरम नहीं आती ?...बहुत शरम आती है मुझे ।

ममा : उस बेचारे ने तो सिर्फ़ इतना लिखा था कि...

पपा : वेल्फ़ेयर होम में पपा को घर से ज़्यादा आराम मिल सकता है । पपा एक बूढ़ा पारसी है और बूढ़े पारसियों के लिए...।

ममा : उसका यह मतलब बिलकुल नहीं था ।

पपा : उसका जो मतलब था...(**दर्द से कराहकर**) वह भी अच्छी तरह मालूम है मुझे ।

पल-भर दोनों चुप रहकर सामने देखते रहते हैं ।

ममा : आजकल कुछ ज़्यादा ही सिड़ी हो गए हो तुम ।

पपा : हंः ।

ममा : मुझे बिलकुल पसंद नहीं...तुम्हारा यह 'हंः, हंः' करना ।

पपा : हंः ।

ममा नाराजगी से उसे देखती हुई कुर्सी से उठ खड़ी होती है । पल-भर कुछ सोचती खड़ी रहती है, फिर झुककर पलंग के नीचे से चिट्ठी उठा लेती है ।

ममा : देख लो, देखनी है तो...।

पपा देखकर आँखें मूंद लेता है ।

पपा : रख दो, मुझे नहीं देखनी है ।

ममा : अब देख लिया है कि जहाँगीर की चिट्ठी नहीं है... इसलिए तुम्हें नहीं देखनी है ।

पपा : जिस किसी की भी हो...मुझे नहीं देखनी है ।

ममा : जिस किसी की भी हो ! (**चिट्ठी पास की तिपाई पर पटकती हुई**) अच्छा ही है न देखो तो । मैं जो कोशिश

करती हूँ कि ऐसी चिट्ठियों पर तुम्हारी नज़र न पड़े, वह इसीलिए न कि...?

पपा मुँह में कुछ बड़बड़ाता है। जमशेद चाय की ट्रे लिए हुए बाहर से आता है।

(**जमशेद से**) कितनी वार कहा है तुझसे...कितनी बार... कि धीमे पैरों अन्दर आया कर। पपा को इस खट्-खट् से चाहे कितनी तकलीफ़ पहुँचती रहे...तुझे तो बात सुननी ही नहीं है।

जमशेद : (**ट्रे तिपाई पर रखता हुआ**) वे लोग नहीं आएँगे...आज शाम को।

पपा : कौन लोग?

ममा : तू होकर आया है उनके यहाँ?

जमशेद : कह रहे थे उन्हें आज कहीं जाना है...किसी और दिन आएँगे।

पपा : कौन लोग?

ममा : (**खीझ के साथ**) तूने कहा ही नहीं होगा ठीक से उनसे... कि मैंने ज़रूरी बुलाया है उन्हें।

जमशेद : और पता नहीं कैसे कहना था!... पूरा दरवाज़ा तक तो खोला नहीं उन्होंने।

ममा : दोनों घर पर थे?

पपा : कौन लोग?

जमशेद : दोनों ही थे।

ममा : (**पपा से**) रोमा-रिशी।

जमशेद : दरवाज़ा रोमा-बीबी ने खोला था। रिशी बाबू पीछे से आये थे।

ममा : (**सोचती हुई**) एक बार फिर हो आना उनके यहाँ...अभी थोड़ी देर में। कहना कि अब नहीं तो...रात को किसी वक़्त चक्कर लगा जायें यहाँ।

जमशेद बिना कुछ कहे उसी तरह ठक्-ठक् करता वापस जाने लगता है।

तूने सुन ली है न बात ?

जमशेद : (जाते-जाते) वे होंगे ही नहीं वहाँ...कहने किससे जाऊँगा ?

चला जाता है।

ममा : (हताश) तुम देख रहे हो न इसे, पपा...?

पपा : उनका बच्चा अब कैसा लगता है ?

ममा : पहले थोड़ी बात सुन भी लेता था, अब तो...।

पपा : काफ़ी बड़ा हो गया होगा...साल भर का ! एक ही बार लाये थे वे उसे...कितने दिन हो गये ?

ममा : मन होता है...आज ही पूरी पगार देकर इसकी...दोनों-तीनों महीने की...अलग कर दूँ नौकरी से इसे।

पपा : तब तो पूरे आठ महीने का साल का भी नहीं था।...फिर भी कितना गलगोदना लगता था !

ममा : (और खीझकर) तुम भी मेरी बात नहीं सुनते न ?

पपा : हाँ...कर दो अलग उसे नौकरी से। तीन महीने की कितनी पगार बनती है ? चालीस जमा चालीस जमा चालीस... एक सौ बीस। एक सौ नब्बे और एक सौ बीस...?

ममा : पपा !

पपा : एक स्लेट-पेंसिल ला दो मुझे। मैं सारा दिन ये रक़में लिख-लिखकर...।

ममा : देखो पपा, तुम मुझसे इस तरह की बातें करोगे, तो मैं भी...।

कहते-कहते रुककर पपा की तरफ़ देखती है। पपा की आँखें पल-भर उससे मिली रहती हैं, फिर दूसरी तरफ़ हट जाती हैं।

(नरम पड़कर) तुम क्यों फ़िक्र करते हो इन चीज़ों की ?

मैं जैसे हुआ है, अब तक चलाती ही आयी हूँ।

पपा : हं: !

ममा : तुम्हें कभी पता भी नहीं चलने दिया...कि कैसे करती हूँ, कहाँ से करती हूँ।

पपा : हं: !

ममा : **(कुढ़कर)** फिर तुम्हारी वही 'हं:, हं:' ?

पपा : चाय।

ममा : **(रुआँसी)** कोई और होता न मेरी जगह...

पपा : बना लो, ठण्डी हो जाएगी।

ममा : ...तो कब का पागल हो जाता।

पल्ले से आँखें पोंछती हुई चाय बनाने लगती है।

पपा : **(करवट बदलने की कोशिश में)** ओह !

ममा : पता है तुम कब से बिस्तर पर पड़े हो ?

पपा : ओह ! ओह !

ममा : पूरे दो साल से...बल्कि दो साल दो महीने से।

पपा : बल्कि दो साल...दो महीने...बीस दिन से।...ओह !

ममा : तब से अब तक कैसे होता रहा है सब कुछ ?...बिना तुम्हारी स्लेट-पेंसिल के ?

पपा : **(होंठों पर बह आये लार को सँभालता हुआ)** रुमाल।

ममा : **(उत्तेजित)** कौन मुझे महीना भेजता रहा है ? कौन मुझसे पूछने आता रहा है कि ममा, कैसे करती हो तुम सब कुछ ?

पपा : उमाल ! उमाल !

ममा उठकर ड्रेसिंग टेबल की दराज से एक रुमाल निकाल लाती है।

ममा : बेटा लंदन में है...तीन साल हो गये उसकी शक्ल देखे। बेटियाँ कहने को शहर में हैं...पर महीना-महीना-भर उनकी भी शक्ल नज़र नहीं आती। और लोग जो पहले

मिलने आ जाते थे उनमें से भी अब कोई नहीं आता। **(रुमाल से पपा का मुँह पोंछती हुई)** जैसे डर लगता है हर-एक को कि...।

पपा : **(रुमाल के नीचे से मुँह** हटाने की कोशिश में) चाय।

ममा फिर भी कुछ देर रुमाल से उसका मुँह पोंछती रहती है।

और नहीं, बस ! ...चाय।

बाहर जीने से उतरते पैरों की आवाज़ सुनायी देती है।

ममा : **(चमककर)** यह फिर जा रहा है नीचे...फिर जा रहा है नीचे यह ! अब तो कहीं जाने के लिए...इसे पूछना भी नहीं होता किसी से...बताना भी नहीं होता किसी को कुछ।

पपा : अ-अ-अ-अ-अ ! ह-ह-ह-ह-ह !

ममा : जब चाहे जहाँ चला जाय। जब चाहे जहाँ से लौट आय।

पपा जैसे विरोध करने के लिए बाँहें चादर से निकालकर ऊँचा उठने की कोशिश करता है।

पपा : हुश्—हुश्—हुश् !

ममा : **(और चमककर)** उठ जाओ तुम अपने-आप ! ...दो साल से तो मैं उठाती रही हूँ, आज अपने-आप उठ जाओ।

कन्धों से सहारा देकर पपा को हल्के झटके से ऊँचा उठा देती है, फिर तकिये पीठ-पीछे रखकर उनसे टेक लगवा देती है। पपा आँखें झपकता हुआ चाय की प्याली पकड़ने के लिए हाथ ऊँचा कर लेता है।

पपा : लाओ, दो।

ममा मुँह से कुछ न कहकर जैसे आँखों से बड़बड़ाती हुई प्याली में चीनी हिलाती रहती है। पपा कुछ देर हाथ ऊँचा रखने के बाद खामोश झुँझलाहट के साथ उसे नीचे गिर जाने देता है। ममा तब चाय की प्याली उसकी तरफ़ बढ़ा देती है।

ममा : **(अधीर)** ले लो न अब।

पपा : मुझे नहीं चाहिए।

ममा पल-भर रुककर उसे देखती रहती है।

ममा : नहीं चाहिए, तो...।

गुस्से से प्याली तिपाई पर रखने लगती है। पपा गाली-देती नज़र से उसे देखता हुआ फिर हाथ ऊँचा कर लेता है।

पपा : लाओ, दे दो।

ममा : **(प्याली उसे देती हुई)** तुम तो जैसे...आदमी नहीं हो तुम।

पपा : हो ही नहीं सकता। **(चाय का एक घूंट भरकर)** आदमी होता, तो...।

ममा : कुछ तो ख्याल होता तुम्हें दूसरे का।...ज्यादा कड़वी तो नहीं है?

पपा : **(सिर हिलाकर)** नहीं...ठण्डी और फीकी है।

ममा : चीनी और चाहिए।

पपा : नहीं...पत्ती और चाहिए?

ममा : **(एकदम झुंझलाकर)** पत्ती और चाहिए?...कितनी पत्ती चाहिए तुम्हें एक प्याली में?

पपा : सात-आठ...कम-से-कम।

ममा बौखलायी नज़र से उसे देखती हुई

अपना माथा हाथ से दबा लेती है ।

ममा : मुझसे अब नहीं होता पपा...अब नहीं होता मुझसे ।... मेरे सिर में आजकल इतना दर्द रहता है कि...।

पपा : घर में एस्परीन नहीं है ?

ममा हताशा के चरम पर पहुँचकर पल-भर उसे देखती रहती है, फिर आवेश के साथ कुर्सी से उठ पड़ती है ।

ममा : है...सब कुछ है घर में...क्या है जो नहीं है ?

पपा : दवाइयाँ तो सब तरह की हैं...जाने कहाँ-कहाँ भर रखी हैं तुमने !

ममा : हाँ, भर रखी हैं ।
और भी देख लो क्या-क्या भर रखा है ।

ड्रेसिंग टेबल के पास जाकर उसकी दराजें खोलने लगती है और एक-एक दराज का सामान बाहर दिखाकर उसे झटके के साथ बन्द करती जाती है । पपा इस बीच चुपचाप उसे देखता हुआ चाय के हल्के-हल्के घूंट भरता रहता है ।

पुराने चीथड़े...जिन्हें धो-धोकर तुम्हारी पट्टियाँ बदली जाती हैं । (**ठक् !**)...डब्बियाँ और बोतलें...तुम्हारी दवाइयों की...जो अब किसी काम नहीं आतीं । (**ठक् !**) ...रद्दी अख़बार और मैगज़ीन...जो कभी तुम पढ़ने के लिए माँग लेते हो । (**ठक् !**)...और...(**पल-भर रुककर उस दराज में से उलझी हुई चिट्ठियों को हाथ में लेती हुई**) चिट्ठियाँ जो मैं तुम्हें पढ़ने के लिए नहीं देती... क्योंकि पढ़ने के बाद तीन-तीन रातें कराहते रहते हो...न खुद सोते हो, न मुझे सोने देते हो ।

उस दराज़ को खुला छोड़कर कबर्डज़ की तरफ़ आ जाती है।

लो, इन्हें भी देख लो।

एक-एक करके तीनों कबर्ड खोल देती है। पहले दोनों कबर्ड बिल्कुल ख़ाली हैं। तीसरे के निचले हिस्से में थोड़ी क्रॉकरी रखी है।

लो...लो...लो।...यह थोड़ी क्रॉकरी इसलिए है कि कभी कोई तुमसे मिलने चला आता है तो...(थूक निगलकर) देख लिया क्या नहीं है घर में ?

हाँफती हुई तीनों कबर्ड खुले छोड़कर डाइनिंग टेबल के पास एक कुर्सी पर जा बैठती है और कुहनियाँ मेज़ पर फैलाकर हाथ बालों में उलझा लेती है। पपा की प्याली ख़ाली हो गयी है। उसे समझ नहीं आता कि ख़ाली प्याली का क्या करे, उसे कहाँ रखे।

पपा : लिखती होगी उसे भी यही सब...तभी वह लिखता है हर चिट्ठी में...!

प्याली कहाँ रखे, कुछ समझ नहीं आता, तो गुस्से के मारे पैरों से चादर हटा देता है। पैरों पर भी ऊपर तक पट्टियाँ बँधी हैं। चादर हटाने के झटके में हाथ की प्याली उससे संभल नहीं पाती और नीचे गिरकर टूट जाती है। ममा प्याली टूटने के साथ ही सिर उठाती है और हारी नजर से देखती हुई उसकी तरफ़ बढ़ जाती है।

ममा : एक और प्याली तोड़ दी ?

पपा अब हाथ के सॉसर को कहीं रख पाने की कोशिश में व्यस्त रहता है । इस कोशिश में उसका एक पैर पलँग से नीचे लटक जाता है । वह सिर्फ़ मुँह में कुछ बड़बड़ाकर रह जाता है ।

(पपा की स्थिति के प्रति सचेत होकर) ...पपा ! पपा ! पपा ! नीचे गिरकर किस चीज़ का बदला लेना चाहते हो मुझसे ?

उसके हाथ से सॉसर लेकर तिपाई पर रख देती है और उसके पैर ऊपर उठाकर पहले की तरह उसे चादर से ढक देती है ।

पपा : **(ऊपर से हल्का विरोध करता हुआ भी उसके हाथों में आत्म-समर्पण करके)** फू:-फू:-फू: !

ममा : **(आदेश के स्वर में)** अब लेट जाओ ठीक से ।

उसे लिटाने के लिए तकिये ठीक करने लगती है, मगर पपा जैसे और प्रभावोत्पादक ढंग से विरोध करने के लिए थोड़ा आगे को झुक जाता है ।

पपा : **(दर्द से कराहकर)** ओह !

ममा : **(हताश)** लेटोगे नहीं ?

पपा : **(मना करने के ढंग से सिर हिलाकर)** ओह !

ममा : कितनी देर और मेरी जान को धुनोगे...इस तरह बैठे-बैठे ?

पपा : ओ-ओ-ओ-ओ-ओ-ओ-ओ-ओ-ओह !

ममा एक चुभती नज़र उस पर डालकर

टूटी हुई प्याली के टुकड़े बीनने लगती है।

ममा : बैठे रहो मेरी तरफ़ से...एक प्याली और तोड़ दी !

पपा : (**डाँटने के स्वर में**) ओह ! ओह ! ओह !

ममा : कितनी टूटी प्यालियाँ पहले उधर पड़ी हैं...किचन में...।

पपा : (**बड़बड़ाता हुआ**) कितना कुछ किया इनके लिए...क्या हुआ ?

ममा : ...ढेर का ढेर कि किसी दिन ड्यूराफ़िक्स से जोड़ लूंगी...

पपा : और करता रहता, करता रहता...तो भी क्या हो जाता ?

ममा : अब यह कूड़ा ले जाकर और भर दूंगी वहाँ।

पपा : (**अपनी बैठने की स्थिति से परेशान किसी तरह पीछे टेक लगा सकने की कोशिश में**) यही सब होता फिर भी...इसी तरह...।

ममा : (**हाथ रोककर**) क्या कह रहे हो तुम ?

पपा : कह रहा हूँ !...कुछ बाकी भी है कहने को ?

ममा : (**फिर से व्यस्त होती हुई**) बाकी तो जाने क्या-क्या है... किस-किसका...किस-किससे कहने को !

पपा : किस-किस का...किस-किससे कहने को...अभी बाकी है इनका !

ममा : नहीं है, तो बोलते क्यों जाते हो ?

पपा : बोलता जाता हूँ...मैं ही अकेला...!

ममा : (**हल्के विराम के बाद**) तुम्हें एक और टिकिया दे दूं... नींद की ?

पपा : दे दो...जितनी टिकियाएँ हों बोतलों में...सब-की-सब दे दो...नींद की टिकिया !

बाहर ज़ीने से ऊपर आते क़दमों की आवाज़ सुनायी देती है।

ममा : (टुकड़े समेटकर उठती हुई) देखो अब आया है यह... इतनी देर में।

पपा : खाकर एक ही बार ऐसी नींद आये कि...।

ममा : सिर्फ़ अपने से ही वास्ता है इसे...और किसी से वास्ता ही नहीं।

जमशेद ठक्-ठक् करता कमरे के अन्दर आ जाता है।

जमशेद : (**ऊँची आवाज़ में**) वह नहीं उतारने देती मुझे।

ममा : (**चिल्लाकर**) और ज़ोर से चिल्ला...पपा को नींद आनी भी हो, तो न आय।

जमशेद : कहती है...

ममा : बोलता जा...जितना ऊँचा तेरे मन में आय...।

जमशेद : ...कि पहले ही इतनी कम सब्जी उगती है हमारे यहाँ...

ममा : (**पास जाकर हाथ के टुकड़े उसकी तरफ़ बढ़ाती हुई**) ओफ़्फ़ो ! ...ये ले जा उधर।

जमशेद : अगर हम रोज़-रोज़ तुम्हें उतारने दें, तो...।

ममा : मैंने...कहा है...ये...ले जा...उधर।

जमशेद टुकड़े लेने के लिए हाथ नहीं बढ़ाता। अपनी बात बीच में रोककर चुपचाप उसे देखता रहता है।

तो अब खड़ा देखता रहेगा मुझे ?...यह ले नहीं जाएगा ?

जमशेद फिर भी उसी तरफ़ खड़ा देखता रहता है।

मत ले जा...मत ले जा...।

जमशेद चुचपाप हाथ उसकी तरह बढ़ा देता है।

मैं अकेली कर लूंगी सब कुछ। (**टुकड़े उसके हाथ में डालती हुई**) मुझे यहाँ किसी से...कुछ भी दरकार नहीं।

जमशेद टुकड़े हाथ में लिए पल-भर और उसे देखता रहता है, फिर बाहर को चल देता है ।

(अपने पर अधिकार खोकर) तुझसे कितनी बार कहा है मुझे इस तरह मत देखा कर ?

जमशेद : **(जाते-जाते)** पहले ही इतना गंद पड़ा है वहाँ...अब यह गंद ले जाकर और भर दूँगा ।

ममा : **(उसके पीछे-पीछे दरवाज़े तक जाकर)** मुझे यह बिलकुल बर्दाश्त नहीं ।...सुन लिया ?...मुझे यह बिलकुल बिलकुल बर्दाश्त नहीं !

पपा : ओ-ओह !

ममा : **(लौटकर कबर्डों की तरफ़ आती हुई)** तुम तो कभी एक लफ़्ज़ भी नहीं कह सकते उससे !

पपा : वह दे दो मुझे...।

ममा : क्या ?

पपा : वह जो कह रही थीं...नींद की टिकिया ।

ममा : **(पहला कबर्ड बन्द करती हुई)** ऐसे ही तुमने बच्चों को बिगाड़ा था और ऐसे ही बिगाड़ा है...

पपा : सब को...तुम्हें...इसे...आने-जाने वालों को...सारी दुनिया को...।

ममा : **(दूसरा कबर्ड बन्द करती हुई)** और अपने-आप को ।...तीन दिन से अपने को स्पंज भी नहीं करने दिया तुमने । पता नहीं तुम्हें अपने से बू भी नहीं आती ।

पपा : जहाँ-जहाँ जो कुछ बिगड़ा है, सब मैंने बिगाड़ा है...अकेले ने...।

ममा : **(तीसरा कबर्ड बन्द करती हुई)** और किसने ?...अब करवाना है, तो पहले स्पंज करवा लो...फिर उसके बाद.. ।

पपा : मैं न बिगाड़ता, तो कुछ भी न बिगड़ता...सब कुछ वैसे ही रहता...

ममा : (**ड्रेसिंग टेबल के पास जाकर उसकी खुली दराज़ बन्द करती हुई**)...उसके बाद सो लेना जितनी देर जी चाहे...।

पपा : ...जैसे कि मेरे और तुम्हारे पैदा होने से पहले था। नहीं ?

ममा अतिरिक्त गम्भीर होकर पल-भर उसे देखती रहती है।

ममा : अब बता दो न...तुम्हें स्पंज करवाना है या टिकिया लेकर सो रहना है ?

पपा : (**तकियों के सहारे निढाल होकर**) सभी कुछ करना है... यह भी, वह भी और...और भी जाने क्या-क्या ! (**नीचे को फिसलता हुआ दर्द से कराहकर**) ओह ! ओह ! ओह !

ममा : (**ड्रेसिंग टेबल से एक ख़ाली शीशी उठाकर देखती हुई**) यह लिक्विड सोप की शीशी...यह तो ख़त्म हो गयी थी उस दिन।

पपा : ओह !

ममा : रिशी ने मुझसे कहा था वह नयी शीशी ला देगा।

पपा : हंः !

ममा : पता नहीं जमशेद रिशी के यहाँ दूसरी बार होकर आया है या नहीं।

पपा : कल क्या तारीख़ होगी ? सोलह ?

ममा : सत्रह। अभी तुम्हें बताया था सोलह आज है।

पपा : पिछले साल सोलह नवम्बर को जहाँगीर ने हमें एक कार्ड भेजा था...स्विटज़रलैंड से...तुम्हें याद है ?

ममा : ठहरो, मैं इससे पूछकर आती हूँ। यह आदमी नहीं गया होगा दूसरी बार जहाँ तक मुझे पता है इसका...।

बाहर चली जाती है।

पपा : (छत की तरफ़ देखता हुआ) सत्रह नवम्बर को पिछले साल रोमा के लड़का हुआ था...ममा उसे देखने गयी थी अस्पताल में...अठारह नवम्बर को...अठारह नवम्बर को पिछले साल क्या हुआ था ?...कुछ हुआ था अठारह नवम्बर को भी...याद नहीं क्या...कोई आया था...या किसी को आना था और नहीं आया था.. याद नहीं...।

आसपास अँधेरा गहरा होता जाता है। वह कुछ देर चुपचाप आँखें झपकता रहता है। बाहर पेड़ों की सरसराहट बढ़ जाती है। समुद्र की लहरों का शब्द अधिक ऊँचा सुनायी देने लगता है।

(करवट बदलता हुआ अपने मन की किसी बात से सिर हिलाकर)।

हं: !

एक पार्श्व नाटक

छतरियां

भारी मशीन को धकेलती-सी सम्मिलित आवाज़ :

आज से कल। आज से कल। आज से कल।

लगभग अंधेरे रंगमंच पर कुछ लोग आवाज़ के एक-एक झटके से पेंच की तरह घूमते नज़र आते हैं।

सम्मिलित आवाज़ की पृष्ठभूमि में अकेले पुरुष-कंठ की आवाज़।

और इस रूप में युग का संकट (*प्रतिध्वनियाँ :* संकट संकट संकट) हमारे सामने है।

घूमते लोग फिरकी की रफ्तार पकड़ एक-एक करके मंच से बाहर निकल जाते हैं।

वही आवाज़ डंका पीटने की तरह :

संकट का अर्थ है मूल्यों को लेकर उठते प्रश्न। (*प्रतिध्वनियाँ :* प्रश्न प्रश्न प्रश्न) प्रश्नों का अर्थ है विचारों की महामारी। (*प्रतिध्वनियाँ :* महामारी महामारी महामारी) महामारी का अर्थ है मनुष्यता से हटता मनुष्य-जीवन। (*प्रतिध्वनियाँ :* मनुष्य-जीवन मनुष्य-जीवन मनुष्य-जीवन) और मनुष्य-जीवन का अर्थ है...

एक आदमी को ठोकर मारकर रंमंगच पर धकेल दिया जाता है। आदमी किसी तरह सम्भलकर खड़ा होता है और घुटनों को हाथों का सहारा दिये टटोलती नज़र से इधर-उधर देखता है।

तेज़ी से शब्द उगलती दूसरी आवाज़ :

संविधान, सभाएँ, सूदख़ोरी, खादी-ग्रामोद्योग, अन्तरिक्ष-यान, चाबी के बंदर, चाँद की चट्टानें, गेहूँ, रोज़ी, मिरगी और...

पहली आवाज़ काफ़ी ठहराव के साथ :

प्रजातन्त्रीय चुनाव !

एक कोने में रंग-बिरंगी छतरियां (कुकुरमुत्ते) आलोकित हो उठती हैं। आकार एक से तीन फुट। आदमी जाकर उनके आसपास घूमता है। फिर वह सबसे बड़ी छतरी को एक बार अभिलाषा के साथ छू लेता है।

उसके छूने के साथ ही गोली दागने की आवाज़ होती है।

आदमी पल-भर हाथ परे रखता है। फिर छतरी को तोड़ लेने का प्रयत्न करता है।

कई गोलियां एक-साथ दागी जाती हैं।

आदमी कुछ क्षण हाथ हटाये रहता है। फिर एक-दो बार उसी तरह कोशिश करके देखता है।

गोलियों की आवाज़ उसकी हर कोशिश के साथ मिलकर सुनायी देती है।

आदमी कुछ दूसरी छतरियों को छूकर देखता है।

कोई आवाज़ सुनायी नहीं देती।

कुछ आश्वस्त होकर वह चोरी से फिर एक बार सब से बड़ी छतरी को छू लेता है।

गोलियां फिर दागी जाती हैं।

वह हताश होकर जैसे-तैसे उस छतरी को तोड़ लेना चाहता है।

गोलियों की लगातार आवाज़ उसके प्रयत्न को पीछे छोड़ जाती है।

आदमी आवाज़ से स्तब्ध होकर रुका रहता है।

गोलियों की आवाज़ रुकने पर कुछ क्षणों का ख़ामोश अन्तराल।

आहिस्ता-आहिस्ता आदमी के हाथ-पैरों में क्रिया लौटने लगती है। धीमी लयात्मक गति से वह फिर एक बार सबसे बड़ी छतरी को पकड़ लेता है।

गाली फुसफुसाने की आवाज़ :
हरामी पिल्ला।

आदमी के हाथ छतरी से इस तरह बंध जाते हैं कि उसे तोड़ने के सिवा उसके पास कोई चारा नहीं रहता।

उसके हाथों की लय में गालियाँ फुसफुसाने की आवाज़ :
हरामी पिल्ला। हरामी पिल्ला।
उल्लू का पट्ठा। उल्लू का पट्ठा।
सूअर का बच्चा। सूअर का बच्चा।

छतरी को भींचकर काँपते हुए आदमी के हाथ रुक जाते हैं।

कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती।

अब आदमी छतरी को तोड़ लेने के लिए प्रचण्ड भाव से प्रयत्न करने लगता है।

स्पष्ट स्वरों में गालियों की बौछार सुनायी देने लगती है :
तेरे पाजामें में गज़ भर की छिपकली।
तेरी रीढ़ पर सरकंडे की खेती।
तेरी दाढ़ों में गधे का अज़ारबंद।

गालियों की लय से बचने की चेष्टा में आदमी के हाथों का ताल-मेल समाप्त हो जाता है। उसके प्रयत्न का हताश

भाव पहले से कहीं बढ़ जाता है।

चारों तरफ़ से उस पर लानत बरसायी जाती है :

—अबे जाकर देख तेरे घर की घुड़साल में कौन लकड़बग्घा घास चर रहा है।

—तेरी बीवी के पेटीकोट पर काला बंदर थूक लगा रहा है, तू पहले जाकर उसकी थूथन को चाट।

—जाकर बड़े बापू से पूछ उसकी मोमबत्ती किस बुढ़िया के गुसलखाने में छूट गयी है।

—तेरे नीम के पेड़ पर दूसरों के आलू उग आये हैं, काग़ज़ी तरबूज़।

—तेरी रोती बिटिया को पड़ोसियों का टामी बहला रहा है।

—तुझे पता भी है छोटे बापू के जिस्म पर काली-सफ़ेद चित्तियाँ निकल आयी है? पहले जाकर उन चित्तियों को सहला और उन पर मोम और गंधक की मालिश कर।

आदमी अपनी हताशा के चरम पर पहुँचकर ज़ोर से चिल्ला उठता है और उसी आवेश में अपने हाथों को झटक लेता है। तभी वह आश्चर्य के साथ देखता है कि छतरी टूटकर उसके हाथों में आ गयी है।

अन्तिम गाली का अन्तिम शब्द इस तरह दोहराया जाता है जैसे ग्रामोफ़ोन रिकार्ड की सूई एक जगह अटक गयी हो :

मालिश कर...मालिश कर...मालिश कर...मालिश कर... मालिश कर...मालिश कर...

दोहराये जा रहे शब्द से तंग आकर आदमी छतरी को नीचे पटक देता है।

आवाज़ रुक जाती है।

आदमी को पश्चाताप होता है कि उसने अपनी छतरी फेंक क्यों दी। वह बैठकर छतरी को सहलाने लगता है।

चारों तरफ़ से पैरों की आवाज़ सुनायी देने लगती है जो लगातार ऊँची होती जाती है।

आदमी आशंकित भाव से छतरी को थामे उठ खड़ा होता है।

पैरों की आवाज़ धीमी पड़कर विलीन हो जाती है।

आदमी आशंकित भाव से चारों तरफ़ देख लेता है। फिर एक तरफ़ को भागता है।

उधर वह सामूहिक हँसी से टकरा जाता है।

वह एक से दूसरी दिशा में भागने का प्रयत्न करता है।

हर दिशा में वह उसी तरह सामूहिक हँसी से टकरा जाता है।

आदमी कुछ पल फिरकी की तरह घूमकर मंच के बीचोंबीच स्थित खड़ा हो जाता है।

बहुत जल्दी-जल्दी एक के बाद एक सुनायी देती आवाज़ें :

—अकेला आदमी और उसकी अकेली लड़ाई।

—परचे, पोस्टर और अख़बारों की सुर्खियाँ।

—मशीन और आदमी।

—राजनीतिक उतार-चढ़ाव।

—साहित्यिक आन्दोलन।

—आर्थिक हेर-फेर।

—धार्मिक धर-पकड़।

—सभाएँ।

—सम्मेलन।

—जुलूस।

—वाक-आउट।

—हड़ताल।

—घिराव।

—पर असल चीज़, सब से बड़ी चीज़, आदमी की इच्छा-शक्ति और निर्णय।

— निर्णय इस सब का विरोध करने का।

—और उस सब का विरोध करने का जो इस सब का विरोध करता है।

आदमी को लगता है कि छतरी उसके हाथ से निकलकर उड़ जाना चाहती है। वह उसे पकड़ रखने के लिए संघर्ष करने लगता है।

एक बच्चे की किलकारियाँ। वह जैसे अपनी बाँह छुड़ाकर भाग जाना चाहता है, किलकारियों में शरारत का भाव बढ़ता जाता है।

आदमी छतरी को रोक रखने का प्रयत्न करता हुआ आखिर उसे वश में कर लेता है।

किलकारियाँ कुढ़ने के स्वर में बदल जाती हैं।

आदमी कुकुरमुत्ते को थप्पड़ लगा देता है।

बच्चा रोने लगता है।

आदमी छतरी को सहलाने-बहलाने लगता है।

बच्चे का रोना सुबकने में बदलकर शान्त हो जाता है।

आदमी छतरी को अपने से सटाये हुए सहसा चिहुँक जाता है जैसे कि छतरी ने उसे काट लिया हो।

डमरू बजने की आवाज़।

आदमी छतरी से छुटकारा पाने की चेष्टा करता है, पर सफल नहीं हो पाता। उसकी चेष्टाएँ सर्कस में विदूषक की चेष्टाओं जैसी लगती हैं। आखिर

किसी तरह वह छतरी को अपने से परे उछाल देता है और उसे पैरों से कुचलने लगता है।

शेर के हुँकारने की आवाज़।

आदमी आशंकित होकर छतरी को देखता है और उस पर टूट पड़ता है। दोनों के बीच जैसे धींगा-मुश्ती होने लगती है।

हुँकारने की आवाज़ और-और ऊँची होती जाती है।

आदमी कुश्ती में हारकर लंबा हो जाता है। छतरी अब उसकी छाती पर सवार है।

हुँकारने की धीमी पड़ती आवाज़ की पृष्ठभूमि में एक-दूसरी से आगे आने की चेष्टा करती आवाज़ें :

—सोचना और चाहना...

—चाहना और सोचना...

—सोचने से अलग चाहना...

—चाहने से अलग सोचना...

—फिर भी अन्तर्मन की आन्तरिक प्रक्रियाओं के अनुसार...

—जिसका अर्थ है अन्तर्मन की आन्तरिक प्रक्रियाओं के अनुसार...

—अर्थात् अन्तर्मन की आन्तरिक प्रक्रियाओं के अनुसार...

—आदमी का आत्म, आत्म, आत्म...

—आत्म-संतोष...

—नहीं...

—आत्म-संकोच...

—नहीं...

—आत्म-जो-कुछ-भी...

—बड़ी-बड़ी शक्तियों द्वारा घिरकर...

—वे शक्तियाँ जो पीछे हैं...

—वे शक्तियों जो आगे हैं...
—दायें की शक्तियाँ...
—बायें की शक्तियाँ...
—नीचे की शक्तियाँ...
—ऊपर की शक्तियाँ...
—शक्तियाँ, शक्तियाँ...
—शक्तियाँ, शक्तियाँ...

कई एक स्त्रियाँ-पुरुष मंच पर आकर छतरियों को तोड़ने लगते हैं। सब छतरियाँ हाथ लगाते ही टूट जाती हैं। आदमी फटी-फटी आँखों से देखता रह जाता है।

नृत्य की धुन।

लोग छतरियां लिये नाचते हैं। आदमी अपनी छतरी थामे उठ खड़ा होता है। दूसरों की छतरियों से उसे ईर्ष्या होती है। वह भी दूसरों के पैरों के साथ पैर मिलाकर नाचने की चेष्टा करता है, पर उसके पैर लय में नहीं पड़ते।

नृत्य-संगीत को काटती हवाई हमले के साइरेन की आवाज़।

लोग अपनी अपनी छतरियां अपने से सटाये यहाँ-वहाँ छिप जाते हैं। आदमी छिपने की जगह ढूँढता है, पर कोई ठीक-सी जगह उसे नहीं मिल पाती।

एक धमाका।

धार्मिक उपदेश का स्वर :

तटस्थता...मुख्य चीज़ है तटस्थता...जो कि मन की शान्ति का दूसरा नाम है। मन में शान्ति होने से ही बाहर का सारा बिखराव सिमटकर...अर्थात् सब टुकड़े एक होकर...

रेडियो एनाउंसर की आवाज़ :
एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रसारण। इस प्रसारण में महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याएँ राष्ट्रीय दृष्टि से राष्ट्र के सामने प्रस्तुत की जायेंगी। राष्ट्र को राष्ट्रीय संकट से उबारने के लिए जिस राष्ट्रीय संकल्प की आवश्यकता है...क्षमा कीजिये, और कुछ कहने का समय नहीं है... राष्ट्रीय प्रसारण आरम्भ हो रहा है। आरम्भ हो रहा है राष्ट्रीय प्रसारण...

सब लोग सुनने की मुद्रा बना लेते हैं। केवल इस आदमी को सुनने की सुविधापूर्ण स्थिति नहीं मिल पाती।

एनाउंसर :
आप राष्ट्रीय प्रसारण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृपया थोड़ी देर और प्रतीक्षा करें।

आदमी अपनी छतरी कान से लगाकर बैठ जाता है।

एनाउंसर :
आप प्रतीक्षा कर रहे हैं राष्ट्रीय प्रसारण की। आपसे अनुरोध है कि आप थोड़ी प्रतीक्षा और करें।

इस आदमी को छोड़कर और लोग अस्थिर होने लगते हैं।

एनाउंसर :
राष्ट्रीय प्रसारण अभी आरम्भ होने को है। आप से फिर एक बार अनुरोध है कि...नहीं नहीं, अब अनुरोध नहीं है...राष्ट्रीय प्रसारण हो रहा है। राष्ट्रीय प्रसारण।
ग़लत रफ्तार से चलते टेप-रिकार्डर की फैली-फैली आवाज़ें।

लोग इस तरह सिर हिलाते हैं जैसे सारी बात उनकी समझ में आ रही हो। आदमी अचकचाया-सा एक एक को देखता है।

टेप-रिकार्डर का स्वर स्वाभाविक गति में आ जाता है :

हमें इन सब बातों को अपने ध्यान में, अपने जेहन में, अपने दिमाग़ में रखकर चलना है। हम जिंदा हैं, तो कुछ असूलों की ख़ातिर और उन असूलों की वजह से। क्योंकि जंग हो या अमन, दानिशमंदी और सियासत का तकाज़ा है कि हम लोग...

लोग अस्थिर होकर बड़बड़ाने लगते हैं। आदमी ध्यान से सुनना चाहता है, पर लोगों की बडबड़ाहट उसे सुनने नहीं देती।

ग़लत रफ्तार से तेज चलते टेप-रिकार्डर की घिचपिच आवाजें।

लोग फिर ध्यान से सुनते हैं जब कि आदमी को कुछ समझ में नहीं आता।

टेप-रिकार्डर का स्वर फिर स्वाभाविक गति में आ जाता है :

कई-कई सवाल सामने आते हैं। और उनमें से हर सवाल कई-कई दूसरे सवालों की तरफ़ ले जाता है। सवाल सब अपने में बहुत अहम हैं, पर वक़्त की ज़रूरत उन सब सवालों से ज्यादा अहम है। हमें सब से पहले इसी सवाल पर ग़ौर करना है कि वह ज़रूरत क्या है, किस चीज़ की है। क्योंकि अगर हम अपनी असली ज़रूरत को समझ लें, तो बहुत-से सवालों का जवाब खुद-बखुद हासिल हो जाता है। इसीलिए देखना यही है कि हमारी आज की ज़रूरत, और आज की ही नहीं, आने वाले कल की ज़रूरत और उसके बाद आने वाले कल की ज़रूरत...

लोग अब फिर नहीं सुनते। आदमी चिल्लाकर विरोध करता है। लोग उसकी खिल्ली उड़ाते हुए हँसते हैं। आदमी तैश में आकर उनमें से एक को अपनी छतरी दे मारता है। पूरे मंच पर मार-धाड़ शुरू हो जाती है। लोग अंधाधुंध छतरियां चलाते हैं।

लड़ाई की लय से हटकर बहुत धीमी लय में कीर्तन :

हरे रामा हरे रामा
रामा रामा हरे हरे।
हरे कृष्णा हरे कृष्णा
कृष्णा कृष्णा हरे हरे।

लड़ाई की लय उत्तरोत्तर धीमी पड़ती जाती है।

कीर्तन की लय तेज़ होती जाती है।

लड़ाई सिनेमाई स्लो मोशन में चलने लगती है।

एक पागल की बकझक :

मारा मारा मारा मारा।
आ आ मारा मारा।
आज मारा कल मारा।
आज हारा कल हारा।
यहाँ मारा वहाँ मारा।
यहाँ हारा वहाँ हारा।
हारा मारा मारा हारा।
मारा हारा हारा मारा।

लड़ाई करते लोग अपनी-अपनी जगह फ्रीज़ हो जाते हैं।

पागल की बकझक तेज़ हो जाती है।

कल मारा आज मारा।
कल हारा आज हारा।
कल आज हारा मारा।
नाम मारा काम मारा।
नाम काम हारा मारा।

आदमी फ्रीज़ हुए लोगों में घिरकर चारों तरफ़ घूमता है।

चाबुक चलने की आवाज़। पागल चिल्लाने लगता है :

मारा मारा मारा मारा।
मारा मारा मारा मारा।
नहीं मारा नहीं मारा।
नहीं मारा नहीं मारा।

आदमी ऐसे व्यवहार करता है जैसे उसे चाबुकों से पीटा जा रहा हो, लेकिन वह अपनी छतरी हाथ से नहीं छोड़ता।

नारे लगाते जुलूस की आवाज़ें :

—इन्क़लाब,
—ज़िदाबाद।
—हमारी माँगें,
—पूरी करो।
—सब की मिलकर एक ज़बान,
—रोटी, कपड़ा और मकान।

आदमी पिटने के बाद बुरी तरह हाँफता है।

जुलूस की आवाज़ें :

—सोना चाँदी।
—हाय हाय।
—बेगम बाँदी।
—हाय हाय।
—पूरब पच्छिम।
—हाय हाय।
—उत्तर दक्खिन।
—हाय हाय।

आदमी अलग-अलग लोगों के फ्रीज़ हुए हाथ-पैरों को हिलाकर उनमें गति लाने की चेष्टा करता है, पर सफल नहीं हो पाता। हर एक के हाथ-पैर उतने ही

हिलते हैं जितने कि वह हिला देता है। पर बहुत कोशिश करके भी वह किसी के हाथ से उसकी छतरी नही छुड़ा पाता।

जुलूस की लगातार आवाज़ :

हाय हाय हाय हाय।
हाय हाय हाय हाय।
हाय हाय हाय हाय।

आदमी फ्रीज़ हुए लोगों के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है।

सब तरफ़ से पुलिस की सीटियों की आवाज़ें।

फ्रीज हुए शरीरों में सहसा गति आ जाती है और वह एक तंग घेरे में आदमी के इर्द-गिर्द जमा हो जाते हैं। आदमी अपने को उनके बीच रुँधा हुआ महसूस करता है।

माइक पर आवाज़ :

वन टू थ्री...टेस्टिंग, टेस्टिंग, टेस्टिंग...

आदमी घेरे से निकल पाने की कोशिश में और और रुँधता जाता है।

माइक पर आवाज़ :

हमारी आवाज़...टेस्टिग टेस्टिग...अंधेरे में एक चीख है। यह चीख...टेस्टिग टेस्टिग टेस्टिग...अंधेरे की छाती चीरकर... टेस्टिग...एक नयी रोशनी ला सकती है। आज से पहले भी जब कभी यह चीख उठी है...टेस्टिग टेस्टिग...इसने अंधेरे की ताकतों को...टेस्टिग टेस्टिग टेस्टिग...दहलाकर रख दिया है। इसलिए वो खौफ़नाक ताकतें हमेशा इस आवाज़ को...टेस्टिग टेस्टिग...इस चीख को...टेस्टिग...दबा देने पर आमादा रहती है। लेकिन आज हम उन ताकतों को...टेस्टिग टेस्टिग...आगाह कर देना चाहते हैं कि आज हमारी यह आवाज़, हमारी यह चीख, जब फिज़ाओं में

गूँज उठेगी...टेस्टिंग टेस्टिंग...तो बग़ैर एक बार भूचाल लाये... टेस्टिंग टेस्टिंग टेस्टिंग...बग़ैर एक बार क़हर बरपा किये...वन टू थ्री...टेस्टिंग टेस्टिंग टेस्टिंग...

घेरा तंग होते-होते एक ऐसे झुरमुट में बदल जाता है कि सब लोग उसमें से बाहर निकलने के लिए कुलबुलाने लगते हैं। अपने ही बोझ से घेरे के ढह जाने से सब लोग पेट के बल रेंगते उसमें से बाहर आते हैं।

स्कूल की घंटी की आवाज़। साथ ही हाज़िरी ली जाने लगती है।

पेट के बल रेंगते लोग घंटी की आवाज़ के साथ ही सीधी पंक्ति बनाकर खड़े हो जाते हैं और एक-एक करके हाज़िरी का जवाब देने लगते हैं। केवल यह आदमी अब भी चौकस निगाह से इधर-उधर देखता उसी तरह रेंगता रहता है।

हाज़िरी समाप्त होने के साथ फिर स्कूल की घंटी।

सब लोग अपनी-अपनी छतरियाँ यहाँ-वहाँ फेंककर मंच से निकल जाते हैं। आदमी खड़ा होकर भौंचक्की नज़र से आसपास देखता है।

आदमी : **(हड़बड़ी में)**
मेरा नाम ?
(फिर चिल्लाकर)
मेरा नाम ?
अलग-अलग दिशाओं से आवाज़ें
इसका नाम ?
इसका नाम ?
इसका नाम ?

इसका नाम ?
इसका नाम ?

आसपास इतनी सारी छतरियां बिखरी देखकर आदमी की आँखें फैल जाती हैं। वह उन सबको उठाकर बाँहों में समेट लेने की चेष्टा करता है।

आदमी : **(एक-एक छतरी को उठाता)**
इसका नाम ? इसका नाम ? इसका नाम ? इसका नाम ? इसका नाम ?

जल्दी-जल्दी चलता एक कठपुतली का स्वर :
और इसके साथ हमारा आज का कार्यक्रम समाप्त होता है। इस कार्यक्रम में जिन-जिन लोगों ने सीटी बजाने, नारे लगाने तथा भाषण देने आदि की भूमिकाएँ निभायीं, उन सबके प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। पर सबसे अधिक आभारी हूँ मैं उस एक व्यक्ति के प्रति जिसके छतरियों के बागीचे में इतनी तरह की रंग-बिरंगी छतरियां उगती हैं क्योंकि बिना छतरियों की लुभावनी भूमिका के यह अभिनय कदापि सम्भव न हो पाता। आशा है बागीचे के मालिक की यह उदारता आगे भी बनी रहेगी और छतरियों का यह खेल इसी तरह चलता रहेगा।

आदमी की बाँहों में सब छतरियां संभल नहीं पातीं। उन्हें संभाले रखने के लिए उसे बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

भरत वाक्य :
भाषा नहीं, शब्द नहीं, भाव नहीं,
कुछ भी नहीं।
मैं क्यों हूँ ? मैं क्या हूँ ?
जिज्ञासाएँ डसती हैं बार-बार
कब तक, कब तक, कब तक इस तरह ?
क्यों नहीं और किसी भी तरह ?

आकारहीन, नामहीन,
कैसे सहूँ, कब तक सहूँ,
अपनी यह निरर्थकता ?
जीवन को छलता हुआ, जीवन से छला गया।
कैसे जीऊँ, कब तक जीऊँ,
अनायास उगे कुकुरमुत्ते-सा ?
पहचान मेरी कोई भी नहीं आज तक।
लुढ़कता एक ढेले-सा
नीचे, नीचे और नीचे
मैं क्या हूँ ? मैं क्यों हूँ ?
भाषा नहीं,
शब्द नहीं,
भाव नहीं,
कुछ भी नहीं।

आदमी छतरियों से लदा इस बीच सधकर खड़ा रहता है, पर अन्तिम पंक्ति तक आते-आते छतरियां उसकी बाँहों से फिसलने लगती हैं और एक-एक करके नीचे गिर जाती हैं।

• • •



मोहन राकेश

जन्म : अमृतसर में, ८ जनवरी १९२५ । देहान्त : दिल्ली में, ३ दिसम्बर १९७२ ।

पिता श्री करमचन्द गुगलानी धन्धे से वकील थे लेकिन साहित्य और संगीत में अधिक दिलचस्पी लेते थे। मदन मोहन गुगलानी, उर्फ मदन मोहन, उर्फ मोहन राकेश ने अपने लेखन में इन प्रारंभिक प्रभावों को स्वीकार किया है।

उच्चतर शिक्षा लाहौर के ओरिएंटल कालेज में हुई, जहाँ से कि शास्त्री की उपाधि ली और संस्कृत में एम० ए० किया। विभाजन के बाद जालंधर में आकर बसे, हिन्दी में एम० ए० किया और प्रथम श्रेणी में प्रथम रहे। शुरू में कुछ वर्ष प्राध्यापक के रूप में बम्बई, शिमला और जालन्धर में काम किया; १९६२-६३ में 'सारिका' (कहानी-पत्रिका) का बम्बई में एक वर्ष तक संपादन। दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में जीविकोपार्जन करने की कोशिश की, लेकिन चला नहीं; उनकी सृजनात्मक वृत्तियाँ उन्हें केवल लेखक के रूप में अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाये रखने के लिए विवश कर रही थीं। देहान्त के पूर्व के प्रायः दस वर्ष की अवधि में उन्होंने किसी नौकरी का बंधन स्वीकार नहीं किया।